अजंता की ओर



ख्वाजा अहमद अब्बास

"अजन्ता की ओर"

ख्वाजा अहमद अब्बास अंग्रेजी और उर्दू जगत् में माने हुए पत्रकार और कहानी लेखक हैं। इधर उनकी कई कहानियाँ हिन्दी के पत्रों में भी छपी हैं और उन्हें बहुत पसंद किया गया है।

हमें गर्व है कि आज हम उनका प्रथम हिन्दी कहानी-संग्रह पाठकों को भेंट करने में समर्थ हुए हैं। और हमें आशा है कि हिन्दी के पाठक इस पुस्तक का खुले दिल से स्वागत करेंगे।

पहली कहानी "अजन्ता की ओर" एक कलापूर्ण रचना है—इसमें हिंसा की आँधी से परे भागनेवाले एक पत्रकार के मनोभावों का चित्रण लेखक ने बड़ी मर्मता से किया है।

"जिंदगी" का विषय जिंदगी की तरह महान् और विशाल है। पाठक इसमें जो खोजेंगे, वही उन्हें मिलेगा। जीवन और मृत्यु के घेरे में घिरे संसार की झलक आप उस बच्चे में पाएँगे जो दर-दर मारा फिरता है, उस बूढ़े में पाएँगे

अजन्ता की ओर

ख्वाजा अहमद अब्बास



हिन्द किताब्स लिमिटेड
बम्बई

मूल्य २॥)

प्रकाशक : हिन्द किताब्स लिमिटेड, २६१-२६३ हार्नबी रोड, फोर्ट, बम्बई।

मुद्रक : कन्हैयालाल शाह, ओरियंट प्रिंटिंग हाउस, नवीवाड़ी, बम्बई २.

श्री कृष्णदास
और
उसकी सरोज
के नाम

लेखक की अन्य हिन्दी किताबें



१. अँधेरा और उजाला (उपन्यास)
२. मैं कौन हूँ? (नाटक)
३. डॉ० कोटनीस (जीवनी)
४. इंकिलाब [छप रहा है।] (उपन्यास)

सूची

अजन्ता की ओर



"अजन्ता भारतीय कलाका सर्वश्रेष्ठ नमूना है।...दुनियामें इसका जवाब नहीं।...बड़े-बड़े अँगरेज़ और अमेरिकन यहाँ आकर दंग रह जाते हैं।...ये गुफ़ाएँ डेढ़ हज़ार वर्ष पुरानी हैं। इनको खोदने, तराशने, इनमें मूर्तियाँ और तस्वीरें बनानेमें कम-से-कम आठ सौ वर्ष लगे होंगे।...महात्मा बुद्धकी इस मूर्तिको देखिए!"

सरकारी गाइडकी मँजी हुई आवाज़ गुफ़ाकी ऊँची, पथरीली छतसे टकराकर गूँज रही थी। अट्ठाइस रुपए मासिक वेतन और रुपया, डेढ़ रुपया रोज़ाना 'बख़शीश' के बदले में वह अपना तोतेके समान रटा हुआ सबक़ दिनमें न जाने कितनी बार दुहराता था। निर्मलको उसकी आवाज़ ऐसी लगी, मानो रहट चल रहा हो, या चरखा या कोल्हू: रूँ, रूँ, रूँ, रूँ--एक व्यर्थ, निरर्थक आवाज़का ऐसा सिलसिला, जो समाप्त होनेमें ही न आता था।

भारती, जो कलाकी पुजारिन भी थी और स्वयं कलाका एक सुन्दर नमूना भी, गाइडके शब्दोंपर सिर धुन रही थी। हज़ारों वर्ष पुरानी कलाके इस अथाह सागरमें वह डूब जाना चाहती थी। प्रत्येक चित्र, प्रत्येक मूर्ति, प्रत्येक स्तम्भ, प्रत्येक मेहराब, प्रत्येक फूल और प्रत्येक पत्तीको देखकर उसके मुँहसे प्रशंसाका स्रोत फूट निकलता था--"ओह, निर्मल, यह देखो...ओह, निर्मल, वह देखो...महात्मा बुद्धके चेहरेपर कितनी शांति है, और कैसा सुन्दर भाव व्यक्त हो रहा है!...इस अप्सराके

बालोंका सिंगार तो देखो !...कितना सुन्दर...वण्डरफुल..."

निर्मल चुप था। वह न गाइडकी 'रूँ-रूँ' सुन रहा था, और न भारतीके जोश-भरे प्रशंसाके वाक्य। उसकी निगाहें दीवारपर बनी हुई तस्वीरोंपर ज़रूर थीं, किन्तु उसे सिवाय धुँधले, रंगीन धब्बोंके कुछ सुझाई नहीं पड़ रहा था। उसके कान गाइडके रटे हुए भाषणको सुन रहे थे, पर अब तक वह सिर्फ़ एक ऐसी आवाज़ थी, जो अर्थहीन हो, धीमे-धीमे शोरकी तरह, चरखे या कोल्हू या रहटकी 'रूँ-रूँ' की तरह।' भारती जब बोलती, तब निर्मलको ऐसा लगता, मानो उसके कानोंपर कोई अप्रासंगिक या बिलकुल अनावश्यक चोट पड़ रही हो, मानो गर्मीकी दोपहरमें ताँबेकी भाँति तपता हुआ आकाश एक उड़ती हुई चीलकी भयानक चीत्कारसे गूँज उठा हो।

न जाने वे किस नम्बरकी गुफ़ामें थे, न जाने वे किस चित्रके सामने खड़े हुए थे।

गाइडकी 'रूँ-रूँ' चली जा रही थी—"यह देखिए, एक पिछले जन्ममें संन्यासीके रूपमें महात्मा बुद्ध उपदेश दे रहे हैं। बनारसके राजाकी यह नर्तकी महात्मा बुद्धका उपदेश सुनती है। राजाको जब यह मालूम होता है, तो वह खुद जाकर सन्यासीसे सवाल-जवाब करता है—'तुम कौन हो, और क्या उपदेश दे रहे हो ?' वे कहते हैं—'मैं शांति और सत्यकी चर्चा कर रहा हूँ।' राजा अपने जल्लादको हुक्म देता है, कि वह सन्यासीके हाथ, पाँव, नाक तलवारसे काट डाले। पर हर बार महात्मा बुद्धने यही कहा, 'शांति और सत्य तो मेरे मनमें है। नाक, कान, हाथ, पाँव में नहीं है।' यह देखिए उनके घावोंसे खून..."

खून !

गाइडकी बेमानी और खत्म न होनेवाली 'रूँ-रूँ' में से इस एक शब्दने निर्मलके दिमाग़ पर हथौड़ेकी भाँति एक चोट लगाई।

खून !

अजन्ताकी गुफाओंकी पथरीली दीवार एकाएक वायुमण्डलमें विलीन हो गई। अब वहाँ न मूर्तियाँ थीं, न तस्वीरें थीं, न खम्भे, न गाइड और न भारती। न हरी-भरी पहाड़ियाँ, न वह सुरीले शोरके साथ बहनेवाली नदी, न कला और न इतिहास, न धर्म और न मज़हब, न महात्मा बुद्ध और न बनारसका अत्याचारी राजा। बस, खून! खून!

खूनकी नदियाँ, खूनके दरिया, खूनका समुद्र! और उन खूनी लहरोंपर बहता हुआ निर्मल फिर बम्बई वापस पहुँच गया। वही खूनी बम्बई, जिससे भागकर उसने तीन सौ मील दूर और डेढ़ हजार वर्ष पुरानी गुफाओंमें शरण ली थी।

१ सितम्बर। शामको नित्यकी भाँति अपना काम खत्म करके वह अपने मित्र वसन्तके दफ़्तर गिरगाम गया था, कि दोनों साथही ट्रेनसे दादर जायँगे। सहसा खबर आगई कि शहरमें हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। काम छोड़कर हर कोई इस विषयपर रायज़नी करने लगा।

"तुम देखना, अबकी यह दंगा चन्द घण्टोंमें दब जाएगा। इस बार सरकारने पूरी तैयारियाँ कर रक्खी हैं।"

"पर आज कैसे हो गया? मुस्लिम लीग तो काले झण्डोंका प्रदर्शन कल करनेवाली है।"

"यह कलकत्तेकी खबरोंका असर है।"

"सुना है, कई हज़ार छुरे पकड़े गए हैं।"

"सुना है, गोलपीठापर पंडित जवाहरलाल नेहरूकी तस्वीरको एक मुसलमान पुराने जूतोंका हार पहना रहा था।"

"सुना है, भिंडीबाज़ारमें मुसलमानोंने कई हिन्दुओंको मार डाला।"

"पर तुम चिन्ता न करो। अबकी हिन्दू भी चुप बैठनेवाले नहीं हैं।"

इतनेमें एम्बुलेंस कारकी घण्टीकी आवाज़ आई, और सब खिड़कीकी तरफ भागे। सामने हरकिशनदास अस्पतालके फाटकमें घायलोंकी मोटर दाखिल हो रही थी। एक गठे हुए शरीरके राहगीरने जो मैली धोती,

धारीदार क़मीज़ और काली मराठा टोपी पहने हुए था, अस्पतालके दरबानसे पूछा—"ये कौन थे ? हिन्दू या मुसलमान ?"

दरबानने, जो मोटरमें झाँक चुका था, जवाब दिया—"एक मुसल-मान, दो हिन्दू।"

और तुरन्त ही कोनेके हिन्दू होटलके सामने खड़े हुए गिरोहमें खुसुर-पुसुर शुरू हो गई।

चरनी रोडकी सारी दूकानें बन्द हो चुकी थीं। होटल के सब द्वार बन्द थे। सिर्फ़ बीचवाले जंगलेका दरवाज़ा आधा खुला था। ट्राम, देर हुई बन्द हो चुकी थी। सड़कपर सन्नाटा था। हाँ, ऊपरके बल्लोंसे लोग झाँक रहे थे। वायुमण्डलमें एक अजीब तनाव था, जैसे तना हुआ ढोल चोट पड़नेकी राह देख रहा हो।

एकाएक सेन्डहर्स्ट रोडके चौराहेकी तरफ़से किसीके क़दमोंकी चाप सुनाई दी। प्रत्येक व्यक्तिकी निगाहें आवाज़की ओर घूम गईं। एक दुबला-पतला-सा युवक कुरता-पायजामा पहने आ रहा था, बिलकुल बेफ़िक्र, मानो शहरमें दंगा हुआ ही न हो।

"सालेकी हिम्मत तो देखो !" होटलके सामने खड़े हुए गिरोह मेंसे एक आदमीने कहा और गठे हुए शरीरवाले आदमीका हाथ धारीदार क़मीज़के नीचे अपनी मैली धोतीकी तहोंमें न जाने क्या खोजने लगा।

बेफ़िक्र, दुबला-पतला नौजवान अब वसन्तके दफ़्तरकी खिड़कीके नीचेसे गुज़र रहा था। निर्मलने देखा, कि उसके मलमलके कुरतेमेंसे उसकी हड्डियाँ दिखाई पड़ रही हैं। साँवला-सा रंग, छोटा-सा क़द, किन्तु अच्छा प्रतिभाशाली चेहरा। कोई क्लर्क या छात्र मालूम होता था। न जाने क्यों निर्मलका जी चाहा कि चिल्लाकर कहे—"मियाँ-भाई, ज़रा सँभलकर आगे जाना। बड़ा खराब वक़्त है।" पर उसके मुँहसे कोई आवाज़ न निकली और पलक मारतेमें उसने एक चमकीली छुरीको हवामें उछलते देखा।

छुरी मूठ तक दुबले-पतले नौजवानकी कमरमें उतर गई। उसके हाथ एक बार आप ही आप उठे, शायद बचाव करनेके लिए, किन्तु दूसरे ही क्षण वह चकराकर गिर पड़ा, और उसके मुँहसे एक कराहती हुई आवाज़ निकली, जो फ़रियाद भी थी और आख़िरी हिचकी भी—"हाय भगवान् !"

और होटलके सामनेके मजमेमें एक खलबली-सी मच गई। "अरे, यह तो हिन्दू है, हिन्दू !"

"नहीं रे, साला बन रहा है।"

"पायजामा पहने हिन्दू कैसे हो सकता है ?"

"सालेका पायजामा खोलकर देखो !"

छुरी अभीतक नौजवानकी कमरमें गड़ी हुई थी। पर उसकी परवाह न करते हुए कई आदमियोंने बढ़कर सिसकती हुई लाशको पलट दिया और एकने कमरबन्दकी डोरीको खींचकर, गिरह खोल दी।

निर्मलकी आँखें शर्मसे बन्द हो गईं। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो किसीने गन्दगीके ढेरमें उसका मुँह रगड़ दिया हो।

जब उसने आँखें खोलीं तो हत्यारा लाशको फिर उलटकर घावमें से अपनी छुरी बाहर खींच रहा था। लोगोंकी तरफ़ देखकर उसने कहा—"यह तो ग़लती हो गई।" और अपनी मैली धोतीमें से एक कतरन फाड़कर उससे छुरीका ख़ून पोंछने लगा।

छुरी जब घावमेंसे बाहर निकली, तो निर्मलने देखा, कि घावसे सियाह, गाढ़ा ख़ून बह निकला और मृत युवक के कपड़ोंको रंगता हुआ सड़कपर फैल गया। ख़ून...ख़ून !

"ख़ून-ख़राबे, दंगे, लड़ाईसे दूर यह कितनी सुन्दर और शांत दुनिया है, निर्मल !" भारतीने नर्मीसे, प्रेमसे निर्मलकी कमरपर हाथ रखते हुए कहा।

एक झटकेके साथ एक लहरने उसे ख़ूनी सागरके बाहर—किनारेपर

ला फेंका। चौंककर उसने पूछा—"क्या ? क्या कहा तुमने, भारती ?"

"मैं कह रही थी कि अजन्ताकी इन खामोश और शान्तिपूर्ण गुफ़ाओंमें हम बम्बई, कलकत्तेके खून-खराबे से कितनी दूर मालूम होते हैं। कई हज़ार वर्ष दूर! यहाँ तुम ज़रूर उन भयानक दृश्योंको भूल सकोगे, जो तुमने बम्बईमें देखे हैं।"

बेचारी भारती! सुन्दर और सुन्दरताकी पुजारिणी भारती! उसका हृदय प्रेमसे कितना परिपूर्ण था, और उसका मस्तिष्क समझ-बूझसे कितना खाली! उसे निर्मलसे सचमुच प्रेम था, और वह उसे एक मिनटके लिए भी दुखी नहीं देख सकती थी। जिस दिन दंगा शुरू हुआ, उसके अगले दिन ही वह जान गई थी कि निर्मलका कोमल और भावुक मन इस खून-खराबेको सहन नहीं कर सकता। चरनीरोडके खूनके बाद, जिसे उसने अपनी आँखोंसे देखा था, निर्मलने तीन दिनतक खाना नहीं खाया, और न वह सो ही सका। उसको चुप-सी लग गई थी। उसके मन और मस्तिष्कपर एक अजीब उदासी छा गई थी। उसने किसीको इसका कारण न बताया था। उसके साथियोंने पूछा भी, तो उसने टाल दिया। पर भारतीसे वह हर बात कह देता था। उसकी गोदमें सिर रखकर निर्मलने उस खूनी घटना का हाल पूरे विस्तारसे सुना दिया, और अन्तमें कहने लगा—"उस दुबले-पतले युवककी सूरत अब भी मेरी आँखोंके सामने फिरती है, भारती। उसकी आखिरी चीख अब भी मेरे कानोंमें गूँज रही है। उसने मेरी नींद उड़ा दी है। रातको सोता भी हूँ, तो स्वप्नमें देखता हूँ, कि मैं खूनके समुद्रमें डूब रहा हूँ और कोई मेरी मदद नहीं करता!" और उसके घुँघरियाले बालोंमें अपनी मुलायम उँगलियोंसे कंघी करते हुए भारतीने कहा था—"बेचारा निर्मल!" अपने प्रेम, अपनी बातों, सिनेमा, ग्रामोफोन, रेडियो, किस-किस तरह उसने अपने मित्रके दिलसे इस घटनाको भुलानेकी चेष्टा की थी, किन्तु वह असफल रही। निर्मलकी प्रफुल्लता, उसकी हास्यप्रियता, उसकी हाज़िर-जवाबी जैसे सदाके लिए गायब हो गई

थी। वह जब कभी भी भारतीसे मिलने आता, तो घंटों चुपचाप बैठा रहता और उसकी घबराई हुई आँखें टिकटिकी बाँधे वायुमंडलमें न जाने क्या देखती रहतीं।

वह कहती—"मैं जानती हूँ, निर्मल, कि तुम्हारे भावुक मनको कितनी गहरी चोट पहुँची है। लेकिन भगवानके लिए अपने आपको सँभालो और इस घटनाको भुलानेकी कोशिश करो!"

वह जवाब देता—"हाँ, भूल ही जाना चाहिए।" और वह सोचता, 'कौन-कौन-सी घटना भुलानेकी चेष्टा करूँ?'

निर्मल कुमार एक भावुक कवि और साहित्यकार था। उसकी कविताएँ, उसके लेख और उसकी कहानियाँ देशकी चोटीकी पत्रिकाओंमें छपती थीं, और उसके लेखोंके लिए पत्र-सम्पादक लालायित रहते थे। धनी पिता-की पुत्री भारती उसके इन्हीं गुणोंकी प्रशंसक और प्रेमी थी। उसका बस चलता, तो निर्मलके लिए किसी पहाड़की चोटीपर एक सुन्दर बंगला बनवा देती, जहाँ वह आरामसे अपनी रचनाओं-द्वारा साहित्यका भंडार भरता रहता। पर वह तो एक दैनिक पत्रमें रिपोर्टर था। भारती अक्सर कहती कि उस जैसे साहित्यकारके लिए पत्रकारीका पेशा अपनाना उसका स्वयं अपने ऊपर भी जुल्म है और साहित्यपर भी। पर निर्मल कहता, कि आधुनिक कालमें भारतमें साहित्य-रचना सिर्फ दिमागी ऐयाशी है और लिखनेवालेके लिए पत्रकारी ही पेट पालनेका एक साधन हो सकता है। इसके अतिरिक्त रिपोर्टरके रूपमें वह जीवनके नाटकीय दृश्योंको भी देख सकता है। अदालतके मुकदमों, थाना-कोतवालीकी वारदातों, मज़दूरोंकी हड़तालों, जलसों और जुलूसोंमें उसको मानव-चरित्रका अध्ययन करनेका अवसर मिलता और यही अध्ययन उसकी रचनाओंके साँचेमें ढलकर ऐसे लेख, ऐसी कहानियाँ और कविताएँ बन जाते थे, जिनमें जीवनकी सत्यता, जीवनकी तड़प और ज़िन्दगीकी रूह नज़र आती थी।

रिपोर्टरके रूपमें निर्मलको दंगेके दिनोंमें भी सारे शहरमें घूमना पड़ता

था। सेन्डहर्स्ट रोड, भिन्डी बाज़ार, पायधूनी, भायखला, परेल, दादर, सारा नगर युद्ध-क्षेत्र बना हुआ था। हर मोर्चेपर खून और क़त्लकी घटना हो रही थीं। यहाँ एक मुसलमान डबलरोटीवाला मारा गया, वहाँ एक हिन्दू दूधवालेको किसी मुसलमानने छुरा भोंक दिया। यहाँ एक पठानका खून हुआ, वहाँ एक पूरबी भैया मार डाला गया। यहाँ एक दस वर्षके बालकको किसीने काट डाला, वहाँ एक ग्यारह वर्षके बच्चेने एक राह चलते आदमी-की पसलियोंमें चाक़ू भोंक दिया।

सारा नगर 'हिन्दू बम्बई' और 'मुसलमान बम्बई' में बँट गया। किसी हिन्दूको साहस नहीं था कि भिन्डी बाजारमें क़दम रख सके, किसी मुसलमानकी हिम्मत न थी कि पायधूनीसे गुज़र सके। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान क़ायम हो गए थे। निर्मल और दूसरे रिपोर्टरोंको अक्सर पुलीस या फौजके साथ लारियोंमें घूमना पड़ता था। एक दिन एक गोरे सार्जेंटने निर्मलसे कहा—"तुम कांग्रेसी पाकिस्तान नहीं चाहते, फिर भी इस वक़्त बम्बईमें पाकिस्तान क़ायम है या नहीं?" अगले दिन एक अँगरेज़ टामीने निर्मल और उसके साथी रिपोर्टरोंसे कहा—"तुम लोग तो 'क्विट इन्डिया' का नारा लगाते थे न? हमसे कहते थे, 'निकल जाओ! हिन्दुस्तान छोड़ दो!' अब हम छोड़ने को तैयार हैं, तो क्यों हमारी खुशामद करते हो? क्यों हमारे पीछे-पीछे भागते हो? क्यों हमसे अपने बचावकी माँग करते हो? हिन्दू कहते हैं, 'हमें मुसलमानोंसे बचाओ।' मुसलमान कहते हैं, 'हमें हिन्दुओंसे बचाओ।' दोनों हमारी तोपों, हमारी बन्दूकों, हमारे सिपाहियोंके मुहताज हैं। दोनों कहते हैं, 'डोंट क्विट!' और निर्मलको ऐसा लगा, मानों हिन्दुस्तानकी आज़ादीका महल अड़ाड़ा-धम्म करके गिर पड़ा हो। मानों पिछले सौ वर्षोंकी सारी राष्ट्रीय परम्पराएं स्वतंत्रताके लिए हुई सारी कोशिशें मिट्टी में मिल गई हों—असहयोग और खिलाफ़त आन्दोलन, स्वदेशी और बायकाटके सारे आन्दोलन, जलियाँवाला बाग़की क़ुरबानियाँ, गांधीजी और अली बन्धु, भगतसिंह, सत्याग्रह और सिविल नाफ़रमानी, तमाम

राष्ट्रीय नारे और राष्ट्रीय गीत, भारतकी एकता और भारतकी प्रतिष्ठा और मर्यादा, कला और साहित्य, संगीत और चित्रकला, हर चीज़ मिट्टीमें मिल गई हो......

"मिट्टीमें मिलकर भी इस कुन्दनकी चमक नहीं गई!" गाइड बक रहा था।

"अजन्ता भारतकी कला, साहित्य, संगीत और चित्रकलाकी अमर कीर्ति है।" भारती कह रही थी।

पर निर्मलको उस अँधेरी गुफामें, बिजलीके पीले-पीले प्रकाशके घेरेमें भी फीके-फीके रंगोंके चन्द अर्थ-हीन धब्बोंके सिवाय कुछ न दिखाई पड़ा। न सौन्दर्य, न कला, न अर्थ, न उद्देश्य। उसका मन वहाँकी कला और सौन्दर्यसे प्रभावित होनेके स्थानपर एक गहरे गुस्से, एक अथाह घृणासे भरा हुआ था। उसका बस चलता, तो वह चिल्ला उठता—"यह सब क्यों?...यह हज़ारों आदमियोंकी हज़ारों वर्षकी मेहनत क्यों? और किस-लिए...ये पहाड़की गोदमें तराशी हुई गुफाएँ, ये मूर्तियाँ, ये चित्र, यह कला, यह चित्रकारी क्यों, और किसलिए?...बेकार है ये सब! यह सारा परि-श्रम व्यर्थ था! संसारके लाखों वर्षके विकासमें एक व्यर्थ और हास्यास्पद लगा! अच्छा होता कि इतना परिश्रम पत्थरोंमें फूल तराशनेके स्थानपर मनुष्यको मनुष्य बनानेमें खर्च किया जाता, ताकि आज वे एक दूसरेका खून न करते होते।...अजन्तासे हिन्दुस्तानने न कुछ सीखा और न कुछ सीखेगा। ये गुफाएँ संसारसे, वास्तविकतासे, सत्यसे और कर्मसे भागनेके लिए बनाई गई हैं। अजन्ता न केवल बेकार है, बल्कि एक ज़बर्दस्त झूठ है, धोखा है, फ़रेब है!"

गाइड निर्मलकी भयंकर विचार-धारासे बेखबर अपनी 'रूं-रूं' लगाए था—"यह देखिए, महात्मा बुद्ध घोड़े पर चढ़े बाज़ारमेंसे गुज़र रहे हैं। चेहरेपर कितनी शान्ति है!...और यह देखिए! ये स्त्रियाँ अपने-अपने झरोखोंसे कितनी श्रद्धा और भक्तिपूर्ण निगाहोंसे देख रही हैं।"

और भारती कह रही थी—"निर्मल, देखो, इन स्त्रियोंके चेहरोंपर कितना सुन्दर श्रद्धाका भाव है। सच तो यह है कि भारतीय नारियोंकी वास्तविक प्रकृति, उनकी आत्माकी शान्तता, उनकी कोमलता और उनकी ममताको कुछ अजन्ताके कलाकार ही समझे हैं!"

भारतीय नारियोंकी वास्तविक प्रकृति, उनकी आत्माकी शान्तता, उनकी कोमलता, उनकी ममता!

निर्मलका जी चाहा, कि ठहाका मारकर इतने ज़ोरसे हँसे कि गुफाओं की पथरीली दीवारें काँप उठें, ये चट्टानें थर्रा जायँ, यह गुफाओंका सिलसिला उसके घृणाके नारे से गूँज उठे।

भारतीय नारियोंकी वास्तविक प्रकृति, उनकी आत्माकी शान्तता! उनकी कोमलता! उनकी ममता!

झूठ! सरासर झूठ! धोखा! फ़रेब!

निर्मल न कम्युनिस्ट था, न कम्युनिस्टोंसे हमदर्दी रखता था। पर एक दिन वह कम्युनिस्ट पार्टीके सेक्रटरी पूर्णचन्द्र जोशीका बयान लेने गया था, कि एकाएक सड़ककी ओर से कुछ शोरकी आवाज़ आई, और सब खिड़कियोंकी ओर दौड़ पड़े। झाँककर देखा, तो एक बूढ़ा सफ़ेद दाढ़ी वाला मुसलमान अपने खूनमें लथपथ सड़कके बीचोंबीच पड़ा आखिरी साँस ले रहा था। साथके मकानकी बालकनीपर और उसके नीचेके द्वार-पर मराठी स्त्रियोंका एक गिरोह खड़ा हँस रहा था, मानो कोई बहुत दिलचस्प और मज़ेदार तमाशा हो रहा हो!

भारतीय नारियोंकी वास्तविक प्रकृति! उनकी आत्माकी शान्तता! उनकी कोमलता! उनकी ममता!

एक रेडक्रासकी मोटर आई और बूढ़े मुसलमानकी लाशको उठाकर ले गई। सामनेवाले मकानसे एक मराठा स्त्री बाल्टी हाथ में लटकाए निकली, और जहाँ बूढ़ेका खून गिरा था, वहाँ निहायत इतमीनानसे पानी बहाकर सड़कको धो गई। कई दिन तक निर्मलके कानोंमें उन स्त्रियोंके

ठहाके एक भयानक शोर बनकर गूँजते रहे, और उसकी आँखोंके सामने उस बूढ़ेकी सफ़ेद दाढ़ी, जो स्वयं उसके अपने खूनसे रंग गई थी, एक भयानक बवंडर बनकर फड़फड़ाती रही, और उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि सारे भारतकी स्त्रियाँ किसी ऐसे भयंकर खूनी मज़ाक़पर हँस रही हैं जो उसकी समझसे बाहर है !

भारतीय नारियोंकी वास्तविक प्रकृति ! उनकी आत्माकी शान्तता ! उनकी कोमलता ! उनकी ममता !

निर्मल के बहुतसे मित्र मुसलमान थे, किन्तु दंगेके दिनोंमें वह उनके मुहल्लोंमें नहीं जा सकता था। एक दिन उसे मालूम हुआ कि उसके साथी रिपोर्टर और मित्र हनीफ़को सख्त बुखार और सरसाम हुआ है। निर्मलसे न रहा गया और वह हिम्मत करके भिन्डी बाज़ार पहुँच ही गया, जहाँ एक चालमें हनीफ़ अकेला रहता था।

क्राफोर्ड मार्केटपर सिवाय निर्मलके सारे हिन्दू बससे उतर गए। वह कोट-पतलून पहने हुए था और उसकी वेश-भूषासे यह बिलकुल पता न चलता था कि वह हिन्दू है या मुसलमान या ईसाई। रंग गोरा होनेके कारण तो वह पारसी ही दिखाई पड़ता था, किन्तु फिर भी जैसे-जैसे बस बम्बईके 'पाकिस्तानी' इलाकेमें जा रही थी, उसका हृदय भय और परेशानीसे धड़क रहा था। एक बार तो उसे ऐसा लगा कि उसके बराबर बैठा हुआ हट्टा-कट्टा गुन्डानुमा मुसलमान युवक उसके हृदयकी धड़कन सुनकर समझ जाएगा कि यह हिन्दू है और अपनी जाकेटमेंसे छुरा निकालकर उसकी कमरमें भोंक देगा, उसी प्रकार, जैसे चरनी रोडपर उस दुबले-पतले युवकको एक हिन्दू गुंडेने 'रामपुरी' से मार डाला था। और एकाएक न जाने क्यों उसकी कमरमें, रीढ़की हड्डीके पास, खुजली-सी महसूस होने लगी, और एक काल्पनिक चाकूका तेज़ फल उसकी पसलियों में जैसे धँसता चला गया।

बाटलीवाला अस्पतालके पास वह बससे उतरकर पटरी-पटरी चला,

तो उसे चारों तरफ़ हत्यारे-ही-हत्यारे दिखाई पड़े। वह छाबड़ीवाला, जो केले और मोसम्बियाँ बेच रहा था, न जाने वह किस समय अपना तरकारी काटनेवाला चाकू एक हिन्दूकी कमरमें भोंक देगा। और वह लाल दाढ़ीवाला क्रूर पठान तो ज़रूर एक 'काफ़िर बच्चे' की तलाशमें होगा। पीछेसे पथरीली सड़कपर 'खट-खट' की आवाज़ सुनाई दी, जैसे चलनेमें पैरोंकी होती है। निर्मलने घबराकर, घूमकर देखा। कोई बुर्क़ा ओढ़े हुए स्त्री चली आ रही थी। एक क्षणके लिए उसने सन्तोषकी साँस ली ही थी कि एकाएक उसे ध्यान आया, कि इस बुर्क़ेमें कोई 'गुंडा' ही न छिपा हो। और वह क़रीब-क़रीब दौड़ता हुआ हनीफ़की चालकी सीढ़ियोंपर चढ़ गया।

हनीफ़ सरसामके ज़ोरके कारण बेहोश पड़ा था। निर्मलको उसके पास शाम तक ठहरना पड़ा। जब हनीफ़की हालत कुछ ठीक हुई और उसने वापस जानेका इरादा किया, तो उसी समय एक पुलीस लारीपर एक आदमी लाउडस्पीकर द्वारा यह ऐलान करता हुआ वहाँसे गुज़रा कि शामके पाँच बजेसे कई इलाक़ोंमें कर्फ़्यू-आर्डर लगा दिया गया है। कोई घरसे न निकले, क्योंकि गश्त करनेवाले फौजियोंको राह चलते लोगोंपर गोली चला देनेका हुक्म दे दिया गया है। निर्मलने घड़ी देखी। पाँच बजनेमें दस मिनट बाक़ी थे। इतनी देरमें शिवाजी पार्क पहुँचना असम्भव था। लाचार हो उसने रात हनीफ़के कमरेमें ही बितानेका निश्चय कर लिया।

हनीफ़का कमरा किनारेपर था। एक खिड़कीसे बड़ी सड़क दिखाई पड़ती थी। दूसरी एक गलीमें खुलती थी। सड़कपर भगदड़ मची हुई थी। हर आदमी जल्दी-से-जल्दी अपने घर पहुँचनेकी फ़िक्रमें था। निर्मलने देखा कि एक पूरबी 'दूध-भैया' जिसकी लम्बी चोटी दूर हीसे पुकारकर कहती थी, कि मैं हिन्दू हूँ, कन्धेपर बहँगी रखे जिसपर दूधकी मटकियाँ रखी थीं, घबराई हुई नज़रोंसे इधर-उधर, आगे-पीछे देखता

हुआ चला आ रहा है। और उस चरनी रोडवाली घटनाकी तरह फिर निर्मलके जीमें एकदम आया, कि चिल्लाकर 'दूध-भैया' को खतरेसे सूचित कर दे। किन्तु इस बार फिर शब्द उसकी ज़बानपर आकर रह गए। और देखते-ही-देखते तीन तगड़े तहमतबन्द जवानोंने उस दुबले-पतले काले पूरबीको घेर लिया।

"कहाँ जाता है बे, काफ़िरके बच्चे!"

'दूध-भैया' की घिग्घी बँध गई। उससे कोई जवाब न बन पड़ा। शायद उसे तीनोंकी आँखोंमें अपनी मौत दिखाई पड़ी। वह वापस मुड़ा। उधर भी दुश्मनोंका एक गिरोह खड़ा हुआ उसकी ओर हत्यारोंकी नजरोंसे घूर रहा था। एक हिरनकी तरह जो हर तरफ़ शिकारियोंसे घिर गया हो, उसने एक क्षणके लिए निराश दृष्टिसे इधर-उधर देखा और फिर एकाएक वह एक गलीकी ओर भागा और उसका पीछा करते हुए पाँच शिकारी कुत्ते!

निर्मल भागकर गलीवाली खिड़कीकी ओर गया। पर अभी वह उधर पहुँच भी न पाया था कि 'दूध-भैया' के स्वयं अपनी बहँगीमें उलझकर गिरनेकी आवाज़ आई। पीतलकी मटकियाँ एक झंकारके साथ सड़कपर औंधी हो गईं और उनका दूध एक श्वेत लहर बनकर बह निकला। निर्मलने खिड़कीसे देखा, तो उस सफेद दूधमें पूरबी भैयाका लाल खून मिल चुका था।

"भागकर जा रहा था, साला!"

और फिर निर्मलको बराबरके कमरेसे किसी स्त्रीके हँसनेकी आवाज़ सुनाई दी। फिर वह स्त्री कहने लगी—"अरी, ओ गुलबानो, देख तो सही! एक काफ़िर हमारी गलीमें मारा गया है!" उसके कहनेका ढंग बिलकुल वैसा ही था, मानो वह कह रही हो—"ओ गुलबानो, मुबारक हो! हमारी गलीवालोंने आज कितनी बहादुरीका काम किया है!"...और फिर तीन-चार जवान, अधेड़, बूढ़ी स्त्रियोंकी खुशीसे भरी हुई आवाज़ें आईं—"अरी इसकी चुटैया तो देख!"

"अच्छा हुआ। ये पुरबिये दूधमें बराबरका पानी मिलाते हैं। अब सज़ा मिली है।"

"शिरगाममें जो मुसलमान मारे गए हैं, हमारे आदमी भी उनमेंसे एक-एकका बदला लेंगे!"

और फिर उन्हींमें से कोई औरत अन्दर गई और घर-भरका कूड़ा, तरकारीके छिलके, अन्डोंके खोल, गोश्तके छीछड़े और हड्डियाँ, गलीमें लौट दिया—ठीक उसी जगह, जहाँ मक्खियोंने पूरबी भैयाके दूध और खूनपर भिन-भिनाना शुरू कर दिया था।

भारतीय नारियों की वास्तविक प्रकृति! उनकी आत्मा की शान्तता! उनकी कोमलता! उनकी ममता!

सेन्डहर्स्ट रोडवाली स्त्रियों और भिन्डी बाज़ारवाली स्त्रियोंके खूनी ठहाके मिलकर निर्मलके मस्तिष्कपर एक भयानक गूँज बनकर छाए हुए थे। वही गूँज अबतक उसे अजन्ताकी उन गुफाओंमें भी सुनाई दे रही थी। धुँधली फीकी तस्वीरोंमें उसे हर देवी, हर अप्सरा, हर राज-नर्तकी, हर नारीके चेहरेपर एक शैतानी खुशी और उसकी आँखों में एक क़ातिलाना चमक दिखाई पड़ी, और निर्मल का मन एक गहरी नफ़रतसे भर गया।... 'मैं हर स्त्री से नफ़रत करता हूँ!'—वह सोच रहा था—'हर स्त्री से यहाँ तक कि भारतीसे भी!'—भारती, जो उससे प्यार करती थी, और जिससे बहुत दिनोंसे वह भी प्रेम करता था। भारती, जो निर्मलको और उसके भावुक स्वभावको अपने मनकी शरणमें रखना चाहती थी, जो बम्बई और उसकी खूँरेज़ीसे बचाकर निर्मलको क़रीब-क़रीब ज़बरदस्ती भगाकर अजन्ता ले आई थी।

प्रेम, नफ़रत...नफ़रत, प्रेम।...हम भाई-भाई हैं, हम प्रेमी-प्रेमिका हैं, हम दोस्त और साथी हैं, हम एक-दूसरेके साथ प्रेमके बन्धनमें बँधे हैं; मगर हम एक-दूसरे से घृणा करते हैं, हम एक-दूसरेकी कमरमें छुरा भोंकते हैं, हम एक-दूसरेपर पत्थर फेंकते हैं, एक-दूसरेका खून बहाते हैं, एक-दूसरेका

गला काटते हैं।

"देखिए, ये लाशें देखिए, सिर अलग और धड़ अलग!" गाइड अपनी 'रूँ रूँ' किए जा रहा था। बोलते-बोलते उसको पसीना आ गया था, पर उसकी आवाज़ नहीं थकती थी। और भारती, कोमलांगी, सौंदर्य-प्रेमी, भावुक, सहृदय भारतीके चेहरेका रंग गुफ़ाकी दीवारपर तस्वीर ही में लाशें देखकर उड़ा जा रहा था।

"उस ज़ालिम राजाने सबको क़त्ल करा दिया है। सिर कटवाकर लाशें इस गड्ढेमें फेंकवा दी हैं। चीलों, गिद्धोंके खानेके लिए..."

और निर्मलके मस्तिष्कमें यह विचार रेंगता हुआ चला गया कि वास्तवमें राजा ज़ालिम नहीं था, बल्कि शायद उसे गिद्धों, चीलोंका बड़ा खयाल था। उनका पेट भरनेके लिए उसने इन सब लोगोंको मरवाकर उनकी लाशें यहाँ डलवाई थीं। उनके ज़ुल्ममें कम-से-कम मुर्दाखोर जान-वरोंका तो भला था।

लाशें!...

सत्ताइस ठंडी, बिगड़ी, काली और नीली लाशें जो ठंडे पत्थरके फ़र्शपर इस प्रकार बिखरी पड़ी थीं, जैसे फ़सिल कटनेके समय किसी किसान ने गेहूँकी बालें काटकर खेतमें छोड़ दी हों।

जैसे कसाईने सत्ताईस बकरों को उनकी खालें उतारकर एक पंक्तिमें रख दिया हो।...

सत्ताइस इन्सानी लाशें बिखरी पड़ी थीं।

निर्मल अखबारके लिए रिपोर्ट लेने अस्पताल गया था, वहाँ उसने पता लगाया कि किस कमरेमें दंगेसे मरनेवालोंकी लाशें 'पोस्ट मार्टम' और 'कोरोनर' के फ़ैसले के लिए रक्खी गई हैं। उसने अपने जीवनमें सिर्फ़ एक बार एक लाश मेडिकल कॉलेजके सर्जरी-वार्डमें रक्खी हुई देखी थी। उस समय तीन वक़्त तक उससे भोजन नहीं किया गया था। मगर व्यक्तिकी फटी-फटी, मुर्दा आँखें उसका पीछा करती रही थीं। पर यहाँ एक लाश

नहीं, सत्ताइस लाशें रक्खी थीं। बूढ़े, जवान, बच्चे, ! सूखे हुए शरीर ! किसीकी कमरमें घाव, किसीकी आँत पेटसे बाहर निकली हुई, किसीके धड़ से सिर अलग रक्खा हुआ, किसीका भेजा फटे हुए सिरसे बाहर उबलता हुआ ! उनमें कौन हिन्दू था और कौन मुसलमान ? मौतकी बिरादरीमें सब एक थे। क़ातिलकी छुरीने सबको बराबर ला लिटाया था ! वह ठण्डा पथरीला फर्श ! यह था उनका 'पाकिस्तान' और उनका 'हिन्दुस्तान'। यह बेकार मौत, ये पथराई हुई आँखें, यह सन्नाटा, यह बेचारगी ! यह थी उनकी आज़ादी ! यह था उनका इसलाम, और यह था उनका धर्म ! जय-जय महादेव ! अल्लाहो अकबर !

निर्मल व्यवहारिक राजनीतिसे हमेशा दूर भागता था। पत्रकारीके काम के अतिरिक्त, जो वह पेटकी खातिर करता था, वह अमलके मैदानका धनी नहीं था। उसकी दुनिया विचारों और भावनाओं की दुनिया थी। फिर भी दंगे शुरू होनेके तीसरे दिन ही वह अपने मुहल्लेके शान्तिदलमें शामिल हो गया था। और शायद इसलिए कि उसका सम्बन्ध एक बड़े दैनिक पत्र से था, और शान्तिदल हो, सेवासमाज हो या कोई भी संस्था हो, हर सार्वजनिक संस्थाको 'पब्लिसिटी' की ज़रूरत होती है, उसको 'कमेटी' का सदस्य भी चुन लिया गया था। निर्मलका मित्र और पड़ोसी अहमद, जो एक-दूसरे अखबारका सहकारी सम्पादक था, वह भी कमेटीका सदस्य चुन लिया गया था, क्योंकि शिवाजी पार्कके सारे इलाकेमें वह अकेला मुसलमान था, जो शान्तिदलमें सम्मिलित हुआ था। ऐसी कमेटियाँ सरकार द्वारा उस समय तक स्वीकृत नहीं हो सकतीं, जबतक उनमें सब सम्प्रदायोंके लोग मौजूद न हों, इसलिए कमेटीमें उसका लिया जाना एक तरहसे आवश्यक ही था।

कुछ दिनतक निर्मल शान्तिदलके संगठनके काममें लगा रहा। उसे ऐसा लगा, मानो दंगेके असरसे उसपर जो एक सुस्ती और घुटे-घुटे ग़म और विवशताकी हालत छा गई थी, वह अब जाती रहेगी। शान्तिदलमें सम्मिलित होकर उसको वही अलौकिक आनन्द प्राप्त हुआ, जो एक सिपाहीको

युद्धका बिगुल सुनकर होता है। यह युद्ध अन्धकार और प्रकाशके बीच था, विध्वंस और निर्माणके बीच। वह इस युद्धमें एक सिपाही था। वह पैशाचिकता और बर्बरताके विरुद्ध धर्मयुद्धमें लगा था। मुमकिन है, वह इस लड़ाई में कोई बड़ा कार्य न कर सके, लेकिन कमसे कम उसको यह संतोष था, कि वह अपने कर्त्तव्यका पालन कर रहा है, और उसकी ज़िन्दगी बिलकुल बेकार, बेमानी, निरुद्देश्य तो नहीं है।

भारतीने कई बार निर्मलसे कहा—"चलो, बम्बई से कहीं बाहर चले चलें। जब दंगा खत्म हो जाएगा, तब आया जाएगा।" आगरा, दिल्ली, काश्मीर, अजन्ता, एलोरा, मैसूर, लंका न जाने कहाँ-कहाँका लालच दिलाया। पर निर्मलको ऐसे समय बम्बईको छोड़कर बाहर जाना परले सिरे की कायरता जान पड़ी। भारतीने लाख समझाया, कि उस जैसे भावुक कलाकारके लिए अपनी जानको खतरेमें डालना उसकी कला और प्रतिभाके प्रति घोर अन्याय है, पर वह न माना और दफ़्तरके कार्यके समयके अतिरिक्त दिन और रातका अधिकांश समय शांतिदलके काममें लगाता रहा।

निर्मलने समझा था कि शांतिदलका काम सचमुच शांतिका प्रचार होगा। उसका खयाल था कि शांतिदलके सदस्य घर-घर जाएंगे, और लोगों को अमन और शांतिसे रहनेके लिए समझाएंगे, आपसकी साम्प्रदायिक कटुता को दूर करके, एकता और मेल-मिलाप पैदा करनेकी चेष्टा करेंगे। शहरमें स्वयं उनके इलाक़ेमें हरदम तरह-तरहकी अफ़वाहें उड़ रही थीं। 'माहिमके मुसलमान शिवाजी पार्कके हिन्दुओंपर हमला करनेवाले हैं।' 'शिवाजी पार्कके हिन्दू माहिमके मुसलमानोंपर हमला करनेवाले हैं।' 'हिन्दू दूध वाले दूधमें ज़हर मिलाकर मुसलमानोंके हाथ बेच रहे हैं।' 'मुसलमान तरकारीवाले बैंगनों और मोसंबियोंमें ज़हरके इन्जेक्शन देकर हिन्दुओंके हाथ बेच रहे हैं।' 'ईरानी होटलोंकी चाय मत पियो, उसमें ज़हर है।' 'हिन्दू हलवाईकी मिठाई मत खाओ, उसमें ज़हर है।' झूठ, झूठ, झूठ! झूठ और नफ़रत तथा दूसरे सम्प्रदायके प्रति दुश्मनीका एक तूफ़ान

था, जिसमें सारा शहर डूबा जा रहा था। निर्मल और उसके दोस्त अहमद को आशा थी कि शान्ति दलका पहला काम होगा, उस खूनी तूफ़ानको रोकना। पर जल्द ही उनको मालूम हो गया कि असल बात कुछ और ही है।

शान्तिदलका पहला काम चन्दा जमा करना था। अहमदके साथ निर्मल हर किसीके यहाँ गया। गिनतीके जो चन्द मुसलमान थे, उन्होंने मदद करनेसे साफ इनकार कर दिया। "यह शान्तिदलके परदेमें हिन्दू क्या कर रहे हैं, हम खूब जानते हैं।...हमने भी अपनी हिफाज़तके लिए पठान रख लिए हैं।" कुछ हिन्दुओंने कहा—"आपके निहत्थे वालन्टियर हमारी रक्षा भला क्या कर सकते हैं?...हम सिख दरबान रख रहे हैं।" और फिर चुपके से कहा—"सिख कृपाण रख सकते हैं। क्या समझे?"

खैर चन्दा जमा किया गया। बीस पहरेदार पचास-पचास रुपए महीने पर नौकर रक्खे गए। कमेटीमें सवाल पेश हुआ, इनको कहाँ-कहाँ ड्यूटी पर लगाया जाय।

"एक-एक आदमी हर सड़कके नाकेपर लगाया जाय।"

"नहीं यह मूर्खता होगी। हमला सिर्फ तीन तरफ से हो सकता है, माहिमकी तरफ़से, या वर्लीकी ओरसे, या समुद्रकी ओरसे। सिर्फ़ इन नाकों पर पहरा लगाना चाहिए।"

"हमला? किसका हमला?"

"मुसलमान अगर हमला करेंगे, तो और किधरसे हमला करेंगे?"

"पर इन पहरेदारोंका काम क्या होगा?"

"इनसे कह दिया जाय, कि जैसे ही किसी मुसलमान गुण्डेको देखें, सीटी बजा दें, ताकि लोग चारों तरफ़से जमा हो जाएं।"

"सिर्फ़ मुसलमान गुंडे? और अगर हिन्दू गुण्डे हों, तब?" निर्मल ने यह सवाल किया तो, पर वह अहमदसे आँखें चार न कर सका।

कमेटीकी मीटिंगके बाद उसने अहमदसे कहा—"यह तुम्हारी ही हिम्मत है कि ऐसे लोगोंके साथ काम कर सकते हो। मुझे तो ये सब महा-

भाई मालूम पड़ते हैं।"

अहमदने कहा—"ऐसे बेवकूफों और जाहिलोंकी दोनों तरफ़ कमी नहीं है। तुम नहीं जानते कि माहिमके मुसलमानोंमें क्या-क्या अफ़वाहें फैलाई जा रही हैं। वे समझते हैं कि शिवाजी पार्कमें शान्तिदलके नामसे हिन्दुओंकी एक फ़ौज तैयारकी जा रही है, जो बहुत जल्द माहिमके मुसलमानों पर रातमें हमला बोल देगी।"

चन्दा, वालन्टियर, रक्षक, वर्दियाँ, जलसे, प्रस्ताव, पुलिस-कमिश्नर के नाम अर्ज़ियाँ! लेकिन शान्ति का प्रचार? एकता का प्रोपेगेण्डा? इनका नाम नहीं। तब फिर शान्ति-दलका लाभ? इस दौड़-धूपसे फ़ायदा? 'मुसलमान गुण्डे' 'हिन्दू गुण्डे' 'घरोंमें पत्थर जमा करके रक्खो,' 'मैंने तो दस लाठियाँ छिपा रक्खी हैं', 'मेरे पड़ोसीके पास पिस्तौल है।'... शान्ति! शान्ति! शान्ति!

'यह शान्तिका महासागर है, निर्मल!' भारती कह रही थी—'अगर हम आठ-दस दिन ठहरकर यहाँ हर रोज़ आकर कई घण्टे बिताया करें, तो मुझे विश्वास है, कि तुम्हारे बेचैन दिलको ज़रूर शान्ति मिलेगी!'

और गाइड कह रहा था—'आपने सब गुफ़ाएँ देख ली हैं। अब सिर्फ़ एक बाक़ी रह गई है। पर उसमें आपको दूसरी गुफ़ाओंकी तरह संगतराशी और चित्रकारीके सुन्दर नमूने नहीं मिलेंगे। छत, खम्भे, फ़र्श, हर चीज़ अपूर्ण है। उस गुफ़ाका काम अधूरा रह गया है।'

'अधूरा काम!' निर्मलने सोचा, वह भी तो बम्बईमें अपने कामको अधूरा छोड़कर चला आया है, बल्कि अधूरेसे भी कम। अभी जंग शुरू भी नहीं हुई थी, कि उसने हार मान ली थी।

शांति-दल कमेटीकी आख़िरी मीटिंग—

निर्मलने शुरू ही में यह प्रस्ताव रक्खा था कि मामूली अनपढ़, उजड्ड दरबानों और चौकीदारोंकी जगह आज़ाद हिन्द फ़ौजके सिपाहियोंको उचित तनख़्वाहपर रक्षाके लिए रक्खा जाए, क्योंकि वे साम्प्रदायिक द्वेष और

पक्षपातसे बहुत ऊपर थे। उनमें राष्ट्र-सेवाकी इच्छा है, और वे अपनी पुरानी सेवाओं और त्यागके कारण सहायताके अधिकारी हैं। शांति-दलके मंत्रीने उस मीटिंगमें बताया, कि सारे पुराने पहरेदार अलग कर दिए गए हैं, और उनकी जगह आज़ाद हिन्द फ़ौजके सैनिक रख लिए गये हैं। यह सुनकर निर्मलका उत्साह बढ़ गया। उसे ऐसा लगा, कि अब शांतिदलका का काम अच्छे ढंगसे होगा। किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी सारी आशाओंपर पानी फिर गया।

एक बूढ़े मराठे वकीलने सवाल किया—"क्या यह सच है कि आज़ाद हिन्द फ़ौजके इन सिपाहियोंमें मुसलमान भी हैं ?"

मंत्रीने कहा—"हाँ, पर सिर्फ़ एक।"

एक मोटे गुजराती सेठने कहा—मेरे हलकेमें इस बातपर बड़ी बेचैनी फैली हुई है।

एक दुबले, सूखे मारवाड़ीने कहा—"यह तो ग़ज़ब की बात है !"

बूढ़े वकीलने ऊँची आवाज़में कहा—"मैं मंत्रीजीसे इस मामलेमें जवाब-तलब करता हूँ कि क्यों मुसलमानको रक्खा गया ?"

गुजराती सेठने अपना निर्णय सुनाया—"अगर ऐसा होगा, तो हम लोग एक पैसा भी चन्दा नहीं देंगे !"

एक नाटे क़दके डाक्टरने कहा—"मेरे हलकेके लोग भी यही कहते हैं कि अगर मुसलमान..."

दुबले-सूखे मारवाड़ीने बीचमें ही कहा—"यह हमारी स्त्रियोंकी इज़्ज़तका सवाल है।"

बूढ़े वकीलने कहा—"मैं जवाब-तलब करता हूँ ..."

सभापतिने कहा—"शान्ति ! शान्ति !"

मंत्रीने कहा—"मैं तो इसमें कोई हर्ज़ नहीं समझता। आज़ाद हिन्द फ़ौजमें हिन्दू-मुसलमानका कोई भेद नहीं था। लेकिन अब कमेटीकी यही राय है, तो हम किसी बहानेसे मुसलमान सिपाहीको अलग कर सकते हैं।"

सबने एक साथ शोर मचाया—"हाँ हाँ! तुरन्त...फ़ौरन! एक दम!"

सिर्फ अहमद चुप बैठा मुस्करा रहा था।

न जाने क्यों, अहमदको इतमीनानसे मुस्कराते देखकर निर्मलके धैर्यका बाँध टूट गया। उसके दिमाग़के अन्दरकी कोई कल एकाएक तड़ाक से टूट गई।

"नहीं! नहीं!" वह असाधारण जोशसे चिल्लाया।

मन्त्रीजी, जो मीटिंगकी कार्रवाईमें ये वाक्य लिखनेमें लगे थे, कि—'यह प्रस्ताव निर्विरोध पास हुआ, कि आज़ाद हिन्द फ़ौजके जिन सिपाहियों को रक्षाके लिए रक्खा जाय, उनमें कोई मुसलमान न हो', अपनी कुर्सीसे प्रायः उछल पड़े। उनके हाथसे क़लम गिर पड़ी, और सफ़ेद काग़ज़पर, जहाँ इस प्रस्तावको लिखा गया था, सियाहीका एक बड़ा धब्बा पड़ गया।

"नहीं! नहीं! नहीं!" मानो इस एक शब्दको दस बार दोहरानेसे ही बाक़ी दस मेम्बरोंकी राय बदल जाएगी। निर्मल बोला—"मैं ऐसे प्रस्तावका कभी समर्थन नहीं कर सकता!" निर्मलकी आवाज़की तीव्रताने कुछ क्षणोंके लिए सबको ख़ामोश कर दिया। पर इस ख़ामोशीमें उसको अपनी आवाज़ खोखली-सी लगी। "ऐसा प्रस्ताव हमारे लिए शर्मकी बात है! हम शान्ति और एकताके नाम लेते हैं, पर हम स्वयं अपनी निम्नतम साम्प्रदायिकता और पक्षपातपूर्ण नीतिका परिचय दे रहे हैं! यदि यह प्रस्ताव पास हुआ, तो मैं इस मामलेको प्रेस और जनताके सामने रखना अपना धर्म समझूँगा!"

और अहमद मुस्कराए जा रहा था मानो कह रहा हो—"शाबाश मेरे शेर! यह सब बेकार है!"

दुबले-सूखे मारवाड़ीने पहले विरोधीकी हैसियतसे कहना शुरू किया—"निर्मल बाबूको नहीं मालूम कि हम हिन्दू कितने ख़तरेमें हैं।"

गुजराती सेठने कहा—"हम तो साफ़ बोलेंगे। अगर यह मुसलमान

रहेगा, तो हम चन्दा नहीं देंगे !"

नाटे क़दके डाक्टरने कहा—"हम इस्तीफ़ा देकर हिन्दू महासभाके सुरक्षा-दलमें सम्मिलित हो जाएंगे !"

किन्तु चालाक, बूढ़े वकीलने दूसरोंको हाथके इशारेसे चुप करते हुए और निर्मलको सम्बोधित कर कहा—"मिस्टर निर्मल, एक बात बताइए। यह हिन्दू इलाक़ा है। अगर यहाँ पहरा देते हुए उस बेचारे मुसलमान सिपाहीको कुछ ऐसा-वैसा हो गया, तो कौन ज़िम्मेदार होगा ? आप ?" और यह कहकर उसने गुजराती सेठ और नाटे क़दके डाक्टरकी ओर देखकर आँख मारी, मानो कह रहा हो, 'देखा, मेरा क़ानूनी पैंतरा ? ऐसे-ऐसे लौंडे मैंने बहुत देखे हैं !'

अहमद ने मुस्कराकर निर्मलकी ओर देखा और आँखों-ही-आँखोंमें कहा—'मैंने कहा नहीं था, कि कोई लाभ नहीं।'

प्रस्ताव पास हो गया। निर्मल बिफरा हुआ चुपचाप बैठा रहा। वह बहुत कुछ कह सकता था—दावे, दलील, तर्क और राजनीतिकी बातें ! किन्तु उसे मालूम हो गया कि इस साम्प्रदायिकता और धाँधलीकी दीवारों पर सिर पटकना बेकार है। उसके चारों ओर शोर मचता रहा, प्रस्ताव पेश होते रहे, वाद-विवाद चलते रहे, अन्यान्य सदस्योंमें सदाकी भाँति तकरार और तू-तू, मैं-मैं भी होती रही, पर निर्मलने न कुछ कहा, न सुना।

उसका दिमाग़ भयानक विचारों और दृश्योंका मंच बना हुआ था। कलकत्ता, बंबई, अहमदाबाद, नोआखाली, बिहार, पंजाब, दिल्ली ! क़त्ल, खून, खूनकी नदियाँ, खूनके दरिया, खूनका समुद्र, घृणा और हिंसा, स्त्रियोंकी बेइज़्ज़ती, बच्चोंकी लाशें, लाशोंके पहाड़, एक रक्तमय आकाशकी ओर लटकते हुए हज़ारों शोले ! एक कलदार हथौड़ेकी भाँति यह विचार उसके दिमाग़पर चोट लगाता रहा, कि यह सब इसलिए हो रहा है कि शिवाजी पार्क शांति-दलके सदस्य आज़ाद हिन्द फ़ौजके एक मुसलमान सिपाहीको रखनेके लिए तैयार नहीं हैं !

और उसे ऐसा लगा, मानो आज़ाद हिन्द फ़ौजके शानदार ऐतिहासिक कारनामे बेकार थे। आज़ादीकी सारी लड़ाई बेकार थी। सारे देश-भक्तों और आज़ादीके लिए प्राण देनेवाले शहीदोंकी कुरबानियाँ बेकार थीं। सारे राष्ट्रीय नारे, सारे राष्ट्रीय आन्दोलन, सारे राष्ट्रीय नेता, देशका हर आदमी बेकार था, हर चीज़ बेकार थी, शिवाजी पार्कका शांति-दल बेकार था, इस सिलसिलेमें निर्मलका काम बेकार था, उसका बम्बईमें रहना बेकार था, उसकी ज़िन्दगी बेकार थी...इसलिए कि हिन्दू और मुसलमानके ठप्पे आज़ादी और हिन्दुस्तानसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए थे।

उसे शांति-दलके वे सब सदस्य उस समय घृणा, द्वेष और खतरनाक मूर्खताके राक्षस मालूम हुए, जो अपनी अंगारों-जैसी आँखें खोले उसे घूर रहे थे, जो उसे भस्म करनेके लिए उसकी ओर बढ़े आ रहे थे। वही दस नहीं, बल्कि हर तरफ़से लाखों राक्षसोंके दल-के-दल उसकी ओर बढ़े आ रहे थे। उनमें चोटीवाले भी थे और दाढ़ीवाले भी, हिन्दू भी और मुसलमान भी; बंगाली, बिहारी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, पूरबी, पठान और सिख सब थे, और सब उसके खूनके प्यासे!

'भाग!' निर्मलके धड़कते हुए हृदयने उसे ललकारा—'भाग!'

और निर्मल शांति-दलकी मीटिंगकी कार्रवाई खत्म होनेसे पहले ही न केवल मीटिंगसे भाग आया, बल्कि दूसरे दिन भारतीके साथ बम्बईसे भी भाग आया।

"कहाँ चलें?" भारतीने पूछा।

"जहाँ यह रक्तपात न हो, जहाँ अखबार न हों, जहाँ रेडियो न हों, जहाँ हिन्दू न हों, मुसलमान न हों, जहाँ चाकू, छुरे, बर्छे, भाले, तेज़ाब, गुण्डे, मवाली न हों...दूर...दुनिया और ज़िन्दगीसे दूर!"

और भारतीने सोचकर कहा—"अजन्ता!"

अहमद निर्मलको छोड़ने स्टेशनपर आया। गाड़ी चलने लगी, तो उसने कहा—"अच्छा है, चन्द दिनके लिए हो आओ। आबोहवा बदल

जाएगी। लेकिन अगले इतवारको शांति-दलकी मीटिंग है, जिसमें कुछ प्रस्ताव पेश करनेवाला हूँ। उसमें तुम्हारा मौजूद रहना ज़रूरी है।..."

और जब निर्मलने कहा—"मैं शांति-दलकी मीटिंग में कभी न आऊँगा।"

तब अहमदने चलती ट्रेनके साथ भागते हुए कहा था—"तुम इस कामको अधूरा छोड़कर नहीं भाग सकते, निर्मल!"

"अधूरा काम!"

उँह! यह अजन्ताके मूर्तिकार और चित्रकार! ये भी तो इस आखिरी गुफ़ाको अधूरा ही छोड़कर चले गए। न जाने क्यों? न जाने क्या बात हुई, कि आठ-नौ सौ वर्षतक दर्जनों पीढ़ियोंके लगातार और अथक परिश्रमके बाद इस गुफ़ाको अधूरा छोड़नेपर विवश हो गए।

"तुम्हारा क्या ख्याल है, भारती?"

पर भारती वहाँ नहीं थी। न गाइड था। कोई नहीं था। निर्मलकी आवाज़ गुफाकी पथरीली दीवारोंसे टकराकर फिर वापस लौट आई।

शायद वह उस अँधेरी और अधूरी गुफाके किसी कोने में अपने विचारोंमें खो गया था और भारती तथा गाइड यह समझकर बाहर चले गए थे, कि मुमकिन है, वह तंग आकर वापस चला गया हो।

उसको गुफामें घूमते हुए काफ़ी समय हो गया, क्योंकि दरवाज़ेके बाहर जो सामनेवाली हरी-भरी पहाड़ी दिखाई पड़ती थी, वह काली पड़ चुकी थी। शायद सूर्य अस्त हो चुका था। एक बढ़ती हुई घुटनकी भाँति गुफामें अंधकार छा रहा था।

निर्मल बाहर जानेके लिए क़दम बढ़ा ही रहा था कि उसने एक मशालको अपनी ओर आते देखा। यह देखकर वह दंग रह गया, कि जो यह मशाल लिए आ रहा था, वह गुफ़ाके अगले दरवाज़ेसे नहीं घुसा था, बल्कि विपरीत दिशासे आ रहा था। फिर उसने सोचा कि शायद गाइड उसे ढूँढते हुए गुफाके किसी दूसरे अँधेरे कोनेमें चला गया हो और अब

खोद रहा हो।

पर उसके आश्चर्यका कोई ठिकाना न रहा, जब उसने देखा, कि मशाल हाथ में लिए हुए जो आदमी गेरुए रंग की कफ़नी पहिने हुए आया था उसको किसीकी तलाश नहीं थी। उसने एक अधूरे स्तम्भ के सहारे मशाल खड़ी कर दी, और अपनी कफ़नीके किसी झोलेमें से एक छेनी और एक हथोड़ा निकालकर पत्थरको छीलने लगा।

निर्मल उसकी ओर बढ़नेवाला ही था, कि उसने देखा, वैसे ही गेरुए रंगकी कफनियाँ पहिने, मुँड़े हुए सिर के दर्जनों भिक्षु हाथोंमें मशालें लिए गुफाके पिछले अँधेरे भागसे निकले चले आ रहे हैं।

उनमें से किसीने भी निर्मलकी ओर ध्यान नहीं दिया। सब अपनी-अपनी छेनियाँ और हथोड़े निकालकर छत और दीवारें छीलने या स्तंभोंको गोल बनानेमें लग गए। कुछ दीवारपर मिट्टीका लेप करके उसकी सतह बराबर कर रहे थे, ताकि जब वह सूख जाय, तो चित्रकार अपने चित्रों की रंगीन रेखाएँ अंकित कर सकें। गुफा पत्थरपर लोहेकी चोट पड़ने की आवाज़ोंसे गूँज उठी।

कुछ मिनट तो निर्मल उस आश्चर्यजनक दृश्यको देखता रहा। फिर उससे न रहा गया और वह उस मूर्तिकार भिक्षुके पास गया, जिसने सबसे पहले गुफामें प्रवेश किया था।

"क्षमा कीजिए।...मैं आपके कार्यमें बाधक हो रहा हूँ। किन्तु मुझे आप लोगोंको कार्यमें इस तत्परता के साथ व्यस्त देख बड़ा आश्चर्य हो रहा है।"

"क्यों?"

"इसलिए कि मैं समझता था कि इस गुफा का निर्माण अधूरा ही है और यह अपूर्ण ही रहेगा।"

"संसारका निर्माण भी अपूर्ण है। मनुष्य भी अपूर्ण है। पर इनको पूर्ण होना ही चाहिए।"

इस जवाबको निर्मल कुछ समझा और कुछ न समझा। फिर उससे पूछा—"आप कब से काम कर रहे हैं ?"

"नौ सौ वर्षसे।"

"नौ सौ वर्ष ? आपका मतलब है कि आपकी आयु ...?"

"मैं और मुझसे पहले मेरा पिता और उससे पहले उसका पिता। एक पीढ़ीके बाद दूसरी पीढ़ी, और उसके बाद तीसरी पीढ़ी। आत्माके चक्रकी भाँति कामका चक्र भी तो चलता ही रहता है।"

"आपका नाम ?" निर्मलने बातचीतको व्यक्तिगत रूप देनेकी चेष्टा की।

"मेरा नाम ? कुछ नहीं। हम सब बेनाम के हैं।"

और निर्मलको याद आया कि उसने उन सारी गुफाओं में किसी मूर्तिकार या किसी चित्रकारका नाम खुदा हुआ या लिखा हुआ नहीं देखा था।

"फिर आप किसलिए इतना काम करते हैं ?"

"काम किसी उद्देश्यसे नहीं किया जाता। मनुष्य कार्यसे अपने जीवन का उद्देश्य पूरा करता है।"

"तो यह काम कब खत्म होगा ?"

"कौन जाने !"

"इस गुफाको..."

"पूरा होनेमें दो सौ वर्ष लगेंगे। इसके बाद दूसरी गुफा और इसके बाद तीसरी..."

"तो क्या अजन्ता कभी पूर्ण न होगा ?"

"होगा। जब मनुष्य पूर्ण होगा।"

निर्मलको अत्यधिक आश्चर्य होनेपर भी यह पूछने का खयाल रहा, और उसने रूखे तथा कटु-स्वरमें पूछा—"कृपया मुझे समझाइए कि सहस्रों वर्षसे जो आप जैसे हजारों आदमी इतनी मेहनत कर रहे हैं, यह

क्यों और किसलिए? ये पहाड़की गोदसे तराशी हुई गुफाएँ, ये मूर्तियाँ, ये चित्र, यह कारीगरी और यह कलाकारी, यह सब क्यों और किसलिए?" उसके स्वरमें कटुताकी जगह जोश और गुस्सा आता गया—"अच्छा होता कि इतनी मेहनत पत्थरोंमें फूल खिलानेकी जगह मनुष्योंको मनुष्य बनाने में लगाई जाती, ताकि आज वे एक-दूसरेका खून न करते होते। आप लोगोंने शिल्पकला और चित्रकलाके ये जादू-घर हमें धोखा देनेके लिए बनाए हैं। ये गुफाएँ संसारसे, वास्तविकता से, सच्चाई से भागना सिखाने के लिए बनाई गई हैं।"

शिल्पी भिक्षुके चेहरेपर एक अजीब शान्तिपूर्ण मुस्कान थी, जिसमें कटुता लेशमात्र भी न थी। केवल प्रेम, दया और गहरा ज्ञान। उसने अपने कामपरसे नज़र हटाये बिना सिर हिलाकर नम्रतासे कहा—"नहीं!"

निर्मलको उस आदमीकी मुस्कराहट, उसके धैर्य और शान्तिपर गुस्सा आ रहा था। उसने चिल्लाकर कहा—"तो फिर अजन्ताका उद्देश्य? अजन्ताका सन्देश क्या है?"

"सुनो!" और सिर्फ इतना कहकर वह अपने काममें लग गया। गुफामें पूर्ण शान्ति थी। केवल पत्थरपर लोहा पड़नेकी आवाज़ गूँज रही थी।

निर्मल प्रतीक्षामें था, कि भिक्षु उसको अजन्ताका दर्शन, अजन्ताका सन्देश सुनाएगा। पर उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकला। सिर्फ उसकी छेनीकी खट-खट-खट। और पत्थरके पतले-पतले पत्तर छिलकर फर्शपर गिरते रहे।

"तो क्या तुम नहीं बताओगे, कि अजन्ताका सन्देश...?" सहसा निर्मल के अँधेरे मस्तिष्कमें ज्ञानकी एक किरण चमकी और उसके मुँहका वाक्य अधूरा ही रह गया।

गुफामें पूर्ण मौन छाया था। सिर्फ पत्थरपर लोहे की चोट पड़नेकी आवाज़! यही था वह सन्देश, जो वह भिक्षु निर्मलको सुनाना चाहता था।

निर्मलकी आँखोंमें ज्ञानकी नई चमक देखकर वह भिक्षु अपनी मोहक मुद्रासे मुस्करा दिया, और फिर अपने काम में लग गया। निर्मलको ऐसा लगा, मानों उसे एकाएक दुनियाका सबसे बड़ा खज़ाना मिल गया हो। अमृत, संजीवनी बूटी! उस अमूल्य नुस्खेके सामने हर चीज़ हेय थी! उसे अजन्ताका सन्देश मिल गया था!

न जाने कबतक वह उस गुफाके कोनेमें बैठा हुआ पत्थरपर लोहेकी चोट पड़नेकी आवाज़ोंको सुनता रहा—'खट, खट, खट, खट, खट...'

और हर बार जब लोहेकी छेनी पत्थरकी दीवारपर पड़ती थी, निर्मलको ऐसा लगता था, मानो वह कह रही हो—"अमल! अमल!! अमल!!! काम! काम!! काम!!! मेहनत! मेहनत!! मेहनत!!!"

"अमलसे पत्थर मोमकी तरह छीला जाता है, अमलसे पहाड़की चट्टानें काटी जाती हैं, अमलसे पत्थरमें फूल खिलाये जाते हैं, अमलसे चित्रोंमें जीवनका रंग भरा जाता है, अमलसे मनुष्य 'मनुष्य' बनता है! अमल ही पूजा है, अमल स्वयं अमलका पुरस्कार है!"

खट, खट, खट, खट, खट...—पत्थरपर लोहेकी चोट पड़नेकी आवाज़!

"आज नहीं कल, सौ वर्षमें नहीं तो हज़ार वर्षमें ये पत्थर अवश्य छिलकर शिल्पकला और चित्रकला के सुन्दर नमूने बनेंगे। एक-दो के हाथों नहीं, हजारों मिलकर इनको तराशेंगे। पीढ़ियों के बाद पीढ़ियाँ इस कामको जारी रखेंगी। यह काम कभी खत्म न होगा। इसकी मंज़िल कलाका उच्चतम शिखर है।"

खट, खट, खट, खट, खट...—पत्थरपर लोहेकी चोट पड़नेकी आवाज़!

"आज नहीं, तो कल, सौ वर्षमें नहीं तो सहस्र वर्षमें मानव-प्रकृतिके पत्थर छिलकर, तराशकर, रूप और सौन्दर्य, कला और विद्याके सुन्दर नमूने अवश्य बनेंगे। एक-दो के हाथों नहीं; हज़ारों, लाखों, करोड़ों, सारे मनुष्य

मिलकर उसको तराशेंगे। एकके बाद दूसरी पीढ़ियाँ इस कार्यको जारी रक्खेंगी। इसकी मंज़िल मनुष्यकी पूर्णतामें है!"

खट, खट, खट, खट, खट...—पत्थरपर लोहेकी चोट पड़नेकी आवाज़!

निर्मलने देखा कि भिक्षु अपने काममें इतना तल्लीन था कि उसे मालूम भी न हुआ, कि कब हथौड़ेकी चोट उसके अँगूठे पर पड़ी। घावसे लाल-लाल बूँदें टपक-टपककर पथरीले फ़र्शपर गिर रही थीं।

और एकाएक निर्मलको वे सारे चित्र याद आ गए जो उसने उन सभी गुफाओंमें देखे थे। हज़ारों वर्षके बाद भी कितने ताज़े, कितने नये और चमकीले थे उनके रंग!...और न जाने क्यों निर्मलने सोचा कि उन तस्वीरोंकी लालीमें मनुष्यके खूनका रंग है। तभी तो वे इतनी जीती-जागती हैं! तभी उनमें इतनी ज़िन्दगी है।

शायद वह सो गया। शायद वह अपने विचारोंमें खो गया।

जब उसको होश आया, तो सूर्योदय हो चुका था। सूर्यकी तिरछी-तिरछी सुनहरी किरणोंसे गुफा उज्ज्वल हो रही थी। किन्तु चारों ओर पूर्ण सन्नाटा था। न वे शिल्पी थे, न चित्रकार, न मशालें।

तो क्या उसने स्वप्न देखा था? ...शायद? ...कितना विचित्र स्वप्न!

उसने सोचा, 'हाँ, स्वप्न ही होगा। रातभर इस वातावरणमें बितानेसे ताज्जुब नहीं कि मेरी कल्पनाओंका स्वप्न पर प्रभाव पड़ा हो।

किन्तु बाहर जाते समय जब वह उस स्तम्भके पाससे गुज़रा, जिसको उसके स्वप्नवाला भिक्षु तराश रहा था, तो उसने देखा कि स्तम्भपर एक फूल खुदा है, जो कल नहीं था। या शायद यह भी उसकी कल्पनाका धोखा ही हो।

फिर कुछ स्मरण करके, उसने फर्शको देखा। वहाँ लाल मोतियोंकी तरह ताज़े खूनकी कई बूँदें पत्थरपर बिखरी हुई थीं।

निर्मल फिर चौंका। लेकिन उसने सोचा, शायद यह भी उसकी कल्पनाका धोखा ही हो।

\+ + + +

निर्मल भारतीसे मिले बिना स्टेशन पहुँच गया। अगले दिन इतवार था, और उसे शान्ति-दलकी मीटिंगमें अहमदके प्रस्तावोंका समर्थन करनेके लिए पहुँचना जरूरी था। बम्बई से, दंगों से, किसी से भी भागना मुमकिन नहीं था।

रेलमें एक यात्रीने निर्मलसे पूछा—"आप शायद अजन्तासे आ रहे हैं!"

निर्मलने जवाब दिया—"जी नहीं, मैं अजन्ता को जा रहा हूँ।"



ज़िन्दगी



एक बच्चा

ज़िन्दगी और मौत ।

भीषण द्वंद्व था ।

मौत लश्करके लश्कर साथ लेकर आई थी । दुर्बलता, रोग, रक्तका अभाव, गहरा घाव, रक्तमें विषका प्रवेश ।

नौ वर्षका बच्चा, निर्धन बच्चा, दुर्बल बच्चा । कभी उसको पेटभर भोजन मिलनेका सौभाग्य न हुआ था । कुछ ही महीनेका था कि पिताकी मृत्यु हो गई । माँने दूसरा विवाह कर लिया । सौतेला बाप शराबी था और स्वभावका बुरा । जब रातको नशेमें चूर आता तो पत्नी और सौतेले बेटे दोनोंको मारता । हंटर, लकड़ी, जूता जो भी हाथमें आ गया । सहन-शक्तिकी भी एक सीमा होती है । अगले दिन सूरज निकलने से पहले ही बच्चा घरसे भाग निकला ।

उस समय उसकी अवस्था सात वर्षकी थी ।

दो सालतक वह मारा मारा फिरता रहा । अखबार बेचे, जूतोंपर पालिश किया, बरतन धोए, नालियाँ साफ़कीं, बोझ ढोया, भीख माँगी ।

उसका रंग काला था । उसके बापका रंग भी काला था और माँ का भी । उसको मालूम था कि काले माँ-बापके बच्चे हमेशा काले ही होते हैं । परन्तु फिर भी वह अक्सर सोचता, "काश मेरा रंग काला न

होता।" ऐसा मालूम होता था कि काले आदमियोंको ईश्वरने गोरोंकी सेवा करने, उनकी गालियाँ और ठोकरें खानेके लिए ही बनाया है। न जाने उन सब कालोंका क्या दोष था। ईश्वरकी उपासना में वह गोरोंसे कहीं अधिक भक्ति दिखलाते। गिरजे जाते, पादरियोंकी धर्म-दीक्षा सुनते। ईसामसीह पर ईमान लाते। शताब्दियोंके दुःखसे भरे हुए करुण स्वरमें धार्मिक गीत गाते। फिर भी ईश्वरके दरबारमें उनकी कोई सुनवाई न होती। फिर भी गोरे रंगके ईसाई उनको घृणा और तिरस्कारकी दृष्टि से देखते। उसको वह घटना अबतक याद थी जब उसने गलतीसे एक गोरी औरतके सफ़ेद रेशमी वस्त्रोंको छू लिया था। वह सड़कके नुक्कड़ पर अखबार बेच रहा था। गोरी औरत ने उससे अखबार लिया और अपने बेगमें रेज़गारी ढूँढ़ने लगी। बच्चे की दृष्टि अनायास ही उसके सफ़ेद वस्त्रपर जम गई। कितना सफ़ेद था वह फ्राक। दूधसे भी ज़्यादा सफ़ेद। उन बत्तखोंसे भी ज्यादा सफ़ेद जिनको उसने एक बार झीलमें तैरते हुए देखा था। कितना सफ़ेद था वह फ्राक। सफ़ेद और चिकना। नज़र भी फिसली जाती थी। "कोमल भी अवश्य होगा," उसने चमकते फ्राकको ध्यानसे देखते हुए सोचा। और फिर न जाने क्यों उसका जी चाहा कि वह उस वस्त्रको छूकर देखे। कोमल-कोमल, चिकनी-चिकनी वस्तुओंको छूकर, उनपर हाथ फेरकर कितना आनंद मिलता था! एक बार उसको काले रेशमका एक टुकड़ा पड़ा मिल गया था—चिकना और चमकदार। वह उसने अपने छोटेसे बिना तालेके बक्स में छुपाकर रख छोड़ा था। और जब समय मिलता उस टुकड़ेको निकालकर उसपर धीरे-धीरे हाथ फेरकर देखता कि उसकी कोमलता बाक़ी है कि नहीं। मगर उस गोरी औरत का यह फ्राक तो उस रेशमसे भी कहीं अधिक चिकना और चमकदार था। और फिर सफ़ेद था। दूधसे भी ज़्यादा, झीलकी बत्तखोंसे भी ज़्यादा सफ़ेद। और सफ़ेद चीज़ोंमें न जाने क्या गुण था, क्या जादू था कि देखते ही वह बेचैन हो जाता। इस फ्राक को छूने-

में तो और भी आनंद आएगा। उसने अपना काला हाथ उठाया और गोरी औरतके दामनको छू लिया।

गोरी औरत बेगसे पैसे निकालकर देनेही जारही थी कि उसने एक काले हाथको अपने वस्त्रोंसे स्पर्श होते हुए देखा और अपनी छतरी बंद करके बच्चेको मारना शुरू कर दिया।

"बदतमीज़! ज़लील कुत्ते! तेरी यह मजाल। चल, तुझे पुलिसके हवाले करती हूँ।" पुलिसके भयसे वह सिरपर पाँव रखकर ऐसा भागा कि अखबारोंका बंडल वहीं रह गया। इसके दंडमें अखबारवालेने अगले दिनसे उसे अखबार देना बन्द कर दिया।

शहरमें चारों तरफ़ ऊँची-ऊँची इमारतें थीं। आकाशतक ऊँची! सड़कपर खड़े होकर वह ऊपर दृष्टि करता तो ऐसा मालूम होता कि हरएक इमारतकी चोटी बादलोंमें तैर रही है। बादल चलते हुए न प्रतीत होते वरन् ऐसा लगता जैसे इमारत धीरे-धीरे ढलक रही है। और वह डरके मारे फिर सीधा खड़ा हो जाता कि कहीं ईंट और पत्थरका कह पर्वत उसके सिरपर न गिर पड़े।

जब अखबार बेचनेका क्रम टूट गया तो उसने सड़कोंपर आवारा फिरना शुरू कर दिया। कितना सुन्दर शहर था! साफ़ सड़कें, काली-काली चिकनी-चिकनी चमकदार मोटरें, धड़ाधड़-धड़ाधड़ चलनेवाली बिजली की रेलें, जगमगाते हुए सिनेमा और थियेटर, बड़े-बड़े होटल, स्वादिष्ट भोजनोंसे भरे हुए रेस्तोराँ। वह घंटों शीशेकी दीवारोंमेंसे अन्दर सजे हुए केक, पेस्ट्री, फल, भुनी हुई मुर्गियों और शराबकी बोतलोंको देखता रहता। वह सब नियामतें उसके सम्मुख उपस्थित थीं, इतनी निकट कि वह चाहे तो उनको छू सकता था। एक दिन उसने अनायास ही हाथ बढ़ा दिया। खटसे मोटी शीशेकी चादरसे टकराया। एक पुलिसवालेने कठोर स्वरमें घुड़का, "ओ काले बदमाश! चलता-फिरता नज़र आ, नहीं तो डंडा रसीद करता हूँ।" और लाल-हरे केकपर लालसा-पूर्ण दृष्टि डालकर बच्चा आगे

बढ़ गया ।

न जाने क्यों संसारकी सब अच्छी-अच्छी वस्तुएँ गोरे आदमियोंके लिए ही हैं । बच्चे के नन्हेंसे दिमागमें यह प्रश्न एक शहदकी मक्खीकी तरह भनभनाता रहता । आखिर क्यों ? होटल, सिनेमा, आलीशान मकान, सब जगह गोरे आदमी ही रहते थे । काले अगर उस संसारमें थे, तो सेवकों के स्थानपर । होटलोंमें वेटर, सिनेमाघरोंके सामने पहरेदार, आलीशान मकानोंमें नौकर । जब गोरा मालिक और मालकिन अपनी मोटरमें बैठनेके लिए घरसे निकलते तो काला नौकर अदबसे उनके लिए मोटरका दरवाज़ा खोले खड़ा रहता । आखिर क्यों ? आखि यों ?

संसारकी सब चीज़ें गोरोंके लिए थीं, परन्तु आकाशमें जहाँ ईश्वर रहता है वहाँ ज़रूर कालों और गोरोंके साथ समान व्यवहार होता होगा, बच्चेको इसका विश्वास था । और रातको जब वह फिरते-फिरते थक जाता तो सड़कके किनारे बैठकर सिर ऊपर उठाकर आकाशकी ओर देखता । सितारे उसकी ओर देखकर मुसकराते और वह भी अपनी भूख, अपनी थकान भूल जाता । उसने सुना था कि मरनेके बाद मनुष्य आकाशमें ईश्वर के पास चला जाता है । वह सोचता, अच्छा ही होगा अगर मैं मर जाऊँ । फिर मैं वहाँ, जहाँ सितारे हैं, आनन्दसे रहूँगा । मेरा पिता मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा । मैं वहाँ जाऊँगा तो वह कितना खुश होगा !

मगर जीवनका अनथक चक्कर इन विचारोंको अवकाश ही कहाँ देता था । फिर कोई पुलिसका सिपाही सड़कपर अपने पाँवसे खटखट करता और डाँटकर कहता, "चलो-चलो-उठो । यहाँ क्या चोरी का इरादा है । अपने घर जाओ । एकदम ।"

उसका "घर" शहरके उस हिस्सेमें था जहाँ सब काले ही रहते थे । एक पुराना अस्तबल । किसी समयमें यहाँ घोड़े बँधा करते थे, परन्तु अब मोटरोंके कारण घोड़ा गाड़ियोंका रिवाज़ जाता रहा था । अस्तबल बहुत समयसे बेकार पड़ा था और अनेक निर्धन काले लोग, जिनका कहीं ठिकाना

नहीं था, यहाँ आकर सो जाते थे।

रातको जब "घर" लौटता तो उसे ऐसा अनुभव होता कि वह स्वर्गसे नरकमें आगया है। कहाँ गोरे आदमियोंके वह आलीशान मकान, कहाँ यह गन्दी, बदबूदार, अँधेरी चालें। यहाँकी सड़कें भी खराब थीं। और रोशनीका प्रबंध न होनेके कारण कालोंके लिए रात भी काली रहती। हाँ, लेकिन अंधकार-पूर्ण और दुःखमय संसारमें बस एक जगह थी जहाँ कालोंको भी यदि सुख नहीं मिलता तो कमसे कम वह वहाँ अपने आपको भूल ज़रूर सकते थे। वह था शराबखाना। वह कई बार वहाँ गया था। वहाँ उसको चारों ओर अपनी जैसी काली सूरतें ही दिखाई पड़ती थीं। काले पुरुष, काली स्त्रियाँ, जिनके दाँत गोरी स्त्रियोंसे कहीं अधिक सुंदर होते। वेटर, ड्राइवर, घरेलू नौकर, चपरासी, बूटपालिश करनेवाले, नौकरानियाँ, दाइयाँ, अन्नाएँ, बावर्ची और बावर्चिनें। मगर यहाँ तो वह केवल पुरुष थे और स्त्रियाँ। पुरुष और स्त्रियाँ। स्त्रियाँ और पुरुष। खाना और शराब। सिगरेटका धुआँ। और उस धुएँको चीरती हुई अट्टहासकी गूँज। और फिर पियानोपर बैठ जाता और उस पुराने बग़ैर पॉलिशके पियानोंसे संगीतकी एक लहर उठती जिसमें सब डूब जाते। पुरुष और स्त्रियाँ नाचना आरंभ कर देते—थिरक-थिरककर, मटक-मटककर, हँसकर, मुस्कराकर, अट्टहास करते हुए, उछलकर, कूदकर, तालियाँ बजाकर। संगीत और सिगारेटका धुआँ और शराबकी दुर्गंध और काले-काले चेहरोंपर पसीनेकी चमक। और फिर कोई गाना शुरू कर देता और उस संगीतमें और उन गानोंमें नौ वर्ष के काले बालक को नौ हज़ार साल पहलेकी कहानी सुनाई देती। उसकी जातिका इतिहास, एक दर्दभरी कहानी। उसको ऐसा लगता कि संगीतकी लहरोंपर बहता हुआ वह दूर किसी तट पर पहुँच गया है। अँधेरी रात है और सन्नाटा। जंगल साँय-साँय कर रहा है, चारों ओर डरावने पशुओंकी आँखें आगके समान चमकती हुई दिखाई दे रहीं हैं। फिर कहीं दूर से ढोलक बजनेकी आवाज़ आती जो धीरे-धीरे

निकटतर होती जाती। एक भयानक सामंजस्य, उसको सुनकर हृदयकी गति तीव्र हो जाती और एक अज्ञात भय उसके रोएं रोएं में समा जाता; आकाश का भय, बिजली और बादलोंका भय, समुद्र का भय, तूफ़ानका भय, भूत-प्रेत और जादूका भय, शेर-चीते और घड़ियालका भय और सबसे बढ़कर मनुष्यका भय। और बच्चेको इस संगीतमें एक भयानक धुन सुनाई देती—जंज़ीरोंकी झंकार। पराधीनताके आभाससे उसका दम घुटने लगता। परन्तु फिर कहीं पृथ्वीके असीम विस्तारमें जीवन संचार होता और कपासके खेतोंमें सहस्रों पुष्पोंसे एक करुण गीत उठता और आकाशकी ऊँचाईमें खो जाता।

बच्चा इस कहानीको कुछ समझता और कुछ न समझता। परन्तु जब तक पियानो बजना बन्द न हो जाता, वह संगीत-सम्बन्धी भावनाओं और उद्गारोंके इस सागरमें डुबकियाँ खाता रहता। और जब पियानो बजना बन्द हो जाता, उसको ऐसा मालूम होता जैसे एक ज़ोरदार लहरने उसको किनारेपर लाकर पटक दिया हो।

शराबखानेमें सब उसके साथ अच्छा व्यवहार करते थे। कोई खानेको देता, कोई पीनेको—रोटीका एक तोस, गोश्तका एक टुकड़ा, काफ़ीकी एक प्याली। उसका पेट भर ही जाता। मगर एक रातको एक शराबीने उसको एक गिलास शराबका ज़बरदस्ती पिला दिया। बच्चेको ऐसा लगा जैसे चाकूसे उसके गलेको चीरा जा रहा है। कुछ ही क्षणोंके बाद गलेकी चरमराहट जाती रही, मगर उसका सिर फूलने लगा—फुटबालकी तरह। कम से कम उसे अनुभव ऐसा ही हुआ। फुटबालसे बढ़ते-बढ़ते सिर कुप्पा बन गया। और वह डरा कि कहीं सिर इतना बड़ा न हो जाय कि मैं दरवाज़े में फँस जाऊँ। इसलिए वह बाहर निकल गया। लेकिन दरियाकी ठंडी हवाका एक थपेड़ा ही पड़ा था कि सिर फिर अपनी असली हालतमें आ गया। मगर उसके शरीरमें, जो भूख और ज्वरसे बिल्कुल क्षीण हो गया था, एकदम न जाने कहाँसे इतनी ताक़त आ गई—शरीरमें शक्ति और

हृदयमें साहस। उसने सोचा, मैं अभी सोऊँगा नहीं, शहरकी सैर करूँगा और उसके पैर सड़कपर नहीं हवामें पड़ रहे थे।

चलते-चलते वह गोरोंकी दुनिया में पहुँच गया। रोशनियाँ जगमगा रही थीं। शराबखाने, नाचघर और होटल सब गोरे आदमियों और गोरी औरतोंसे भरे हुए थे। मगर एक नुक्कड़पर यह बहुतसे काले आदमी कहाँसे आ गए थे? उनका यहाँ क्या काम? उनमेंसे एक कह रहा था, "हमारे एक साथीको मारा है तो हम दसका खून करेंगे।" बच्चेकी कुछ समझमें न आया कि यह क्या बात है। इस कारण वह दीवारके साएसे लगा-लगा आगे बढ़ गया।

झनसे शीशे टूटनेकी आवाज़ आई और साथ ही एक कोलाहल। पुलिसकी सीटी। कुछ लोग भाग रहे थे और कुछ उनका पीछा कर रहे थे। दूरसे और शीशोंके टूटनेकी आवाज़ आई। पुलिसकी सीटियाँ, औरतों की चीखें और उन सब मिली-जुली आवाज़ोंको चीरती हुई गोली चलनेकी तड़ाखेदार आवाज़। फिर झनसे शीशे टूटनेकी आवाज़।

बच्चेकी कुछ समझमें न आया कि क्या हो रहा है। लोग क्यों भाग रहे हैं; औरतें क्यों चीख रही हैं। उसके दिमाग़में तो केवल एक विचार था। रेस्तोराँकी वह शीशेकी दीवार जिसके पीछे संसारकी सब नियामतें रखी हुई हैं। यदि और शीशेकी दीवारें टूट रही हैं, तो वह भी तोड़ी जा सकती है। यह विचार आते ही वह भागा। ठोकर खाई—गिरा, उठा, फिर भागा, बेतहाशा भागा। पुलिसकी सीटी सुनाई दी, मगर वह न रुका।

वह रही शीशेकी दीवार। अन्दर रंगबिरंगे केक उसी भाँति जगमगा रहे थे। लाल-लाल सेब, पीले-पीले संतरे, सब्ज़ रंगके केले। और उनमें और उसके बीच सिर्फ़ एक शीशेकी दीवार थी। अगर और शीशेकी दीवारें तोड़ी जा रही हैं तो यह भी तोड़ी जा सकती है। उसने एक पत्थर उठाया और पूरे ज़ोरसे दे मारा।

झनसे शीशा टूटनेकी आवाज़ आई। उसके और संसारकी नियामतोंके

बीच जो दीवार खड़ी थी वह टूट गई।

वह केक और फल उठानेके लिए लपका।

एक तड़ाखा हुआ। बच्चेको अपने बाँए पहलूमें एक टीसका अनुभव हुआ। एक बार उसको एक शहदकी मक्खीने काट लिया था। उस क्षण उसको ऐसा लगा जैसे एक शहदकी मक्खी उसके माँसको गोलीकी गतिसे चीरकर अन्दर घुस गई है। इसके बाद उसकी आँखोंके आगे एक अँधेरा छा गया जो उसके रंगसे भी अधिक अन्धकारमय था।

जब उसे होश आया तो वह अस्पतालमें था। बाँए पहलूमें शहदकी मक्खी अब भी काट रही थी। डाक्टर—एक गोरा डाक्टर—कह रहा था, "बच्चा बहुत कमज़ोर है, और घाव बहुत गहरा है। शायद सेप्टिक भी हो गया है। मुझे डर है कि कहीं सुबहतक मर न जाय।"

"नहीं, डाक्टर साहब! ऐसा क्यों कहते हैं।" नर्स—एक गोरी नर्स—ने कहा, "कोशिश तो करनी चाहिए; शायद बच जाए। कितना भोला है बेचारा!"

और बच्चेको डाक्टरका कहना अच्छा लगा और नर्सका कहना बुरा। "अब भी मेरे बचनेकी आशा है!" उसने सोचा। "नहीं, नहीं, मैं ज़िन्दा नहीं रहना चाहता। इस जीवनमें मुझे कोई सुख नहीं है। यहाँ ज़हरीली शहदकी मक्खियाँ काटती हैं। मैं तो मरना चाहता हूँ ताकि मैं आकाशमें ईश्वरके पास सुखसे रहूँ। मेरा पिता मुझे देखकर कितना खुश होगा!" और हल्की-सी एक आहके साथ उसके मुँहसे यह शब्द निकले, "वह देखो सितारे, अच्छे-अच्छे सितारे, मुझे बुला रहे हैं।"

मौतने ज़िन्दगीकी तरफ़ देखकर विजयगर्वसे मुस्कराते हुए कहा, "बस, कुछ घंटोंकी और देर है। यहाँ ही नहीं, संसारके कोने-कोनेमें मेरा ही राज होगा।"

एक बूढ़ा

ज़िन्दगी और मौत।

भीषण द्वन्द्व था।

मौत लश्करके लश्कर साथ लेकर आई थी—बुढ़ापा, कमज़ोरी, भूख। जब पेटमें अन्नका एक दाना न जाएगा तो ज़िन्दगीका चक्कर कैसे चल सकता है!

सत्तर सालका बूढ़ा एक पलंगपर पड़ा था। उसका शरीर सूखा हुआ था। न माँस, न रक्त। बस, हड्डियोंका एक ढाँचा। पेट कमरसे लग गया था। सात दिनसे उसने कुछ न खाया था। एक बढ़ती हुई सेनाके समान कमज़ोरी उसपर क़ाबू पा रही थी। आवाज़ भी मुश्किलसे निकलती थी।

मगर बूढ़ेकी आँखोंमें जीवनकी एक अजीब रोशनी थी, उसके होटों-पर बच्चोंकी-सी मुस्कराहट। उसकी हृदय-गति अनियमित हो गई थी, मगर उसका मस्तिष्क एक मशीनकी भाँति अबतक बिल्कुल ठीक काम कर रहा था। उसका सेक्रेटरी पाँयते बैठा हुआ अखबार सुना रहा था। सारे देशमें बूढ़ेके अनशनने हलचल मचा दी थी। सैकड़ों अपीलें शासनसे की गईं कि उसको छोड़ दिया जाय। सैकड़ों अपीलें उससे की गईं कि वह इक्कीस दिनका अनशन करके अपने जीवनको संकटमें न डाले। अखबारके सम्पादकने अग्रलेखमें लिखा था, "कि वह अपने देश और राष्ट्रके लिए इस अनशनको भंग कर देंगे और अपने अमूल्य जीवनको मौतसे बचा लेंगे। हम किसी भी दशामें अपने प्यारे नेताकी मौत सहन नहीं कर सकते।"

बूढ़ेने यह सुना और मुस्कराया।

एक युवक पत्रों और तारोंका एक अंबार लेकर भीतर आया। सबका विषय एक ही था। "ईश्वरके लिए अनशन तोड़ दीजिए।" "आपकी जान देशकी दौलत है, नष्ट न कीजिए।" बूढ़ेने सुना और मुस्करा दिया।

कई डाक्टरों ने प्रवेश किया और बूढ़ेकी जाँच करने लगे। नाड़ी, हृदयकी गति, ज़बान, आँखें। और बूढ़ा धीमी आवाज़में उनसे हँसी-मज़ाककी बातें करता रहा। एक डाक्टरके मुँहपर चिन्ताके चिन्ह देखकर बूढ़ा बोला, "अरे भई, अनशन मैं कर रहा हूँ या तुम!" और उसकी आँखें हँसने लगीं।

डाक्टर दूसरे कमरेमें परामर्शके लिए चले गए।

एकने कहा, "कमाल है! सात दिन हो गए, दाना पेट में नहीं गया। ऐसी हालतमें ज़िन्दा रहना भी एक अनहोनीसी बात है।"

दूसरेने कहा, "मगर दिलकी धड़कन कमज़ोर होती जारही है।"

तीसरेने कहा, "इसीसे तो मैं भी परेशान हूँ। बदनमें ताक़त ही नहीं है। कैसे मौतका सामना कर सकता है?"

मौत पास ही खड़ी यह सब सुनकर विजय-गर्वसे मुस्कराई और फिर बूढ़ेके कमरेमें जाकर उसके सिराहने खड़ी हो गई।

मौतको कोई न देख सकता था। मगर बूढ़ेकी वृद्धा पत्नीने प्रेमकी दृष्टि से जब अपने पतिकी ओर देखा तो उसको सिराहने मौत खड़ी हुई दिखाई दी। उसको ऐसा मालूम हुआ जैसे मौत मुस्करा रही हो। उसने आँखें बन्द करलीं और ईश्वरसे प्रार्थना की, "हे भगवन्! मेरे पतिको जान बचा दे, मेरे प्राण ले ले। मेरी लाज तेरे हाथ है। ईश्वर! ऐसा न हो कि मेरी मृत्युसे पूर्व ही मेरा पति मुझसे बिछुड़ जाए।"

फिर वह बूढ़ेके पलंगके पास जाकर बैठ गई। उसका जी चाहता था कि अपने पतिके आगे हाथ जोड़े और कहे, "मेरी खातिर यह अनशन तोड़ दो। अपने प्राणोंसे न खेलो।" मगर उसके मुँहसे एक शब्द न निकला। साठ सालके विवाहित जीवनमें उसने कभी अपने पतिके संकल्पोंका विरोध नहीं किया था। अपने धर्मके नियम भंग किए, पारिवारिक जीवनको तिलांजलि दी, धन-दौलतको त्याग दिया, शासकोंसे शत्रुता मोल ली, अनेकों बार बंदी हुआ, फिर भी कभी पत्नीने उफ़ न की। उसका प्रेम उस सीमापर पहुँच गया था जहाँ "मैं" और "तुम" का प्रश्न ही नहीं रहता। उसने अपने व्यक्तित्वको अपने पतिके व्यक्तित्वमें सम्मिलित कर दिया था। अब उसका अपने पतिसे यह कहना कि वह व्रत भंग कर दे, ऐसा ही था जैसे वह स्वयं अपनेसे कहे। वह चुप रही। मगर अपनी आँखोंपर उसका बस न चला, वे आँसुओंसे उमड़

आईं।

बूढ़ेने पत्नीकी आँखोंमें आँसू देखे और मुस्कुराकर बोला, "पगली, चिन्तित न हो, मैं मरूँगा नहीं।"

पत्नीने आँसू पोंछ डाले और मुस्कराहटकी हल्कीसी झलकसे झुर्रियोंदार चेहरा चमक उठा।

यह उसने पत्नीकी चिन्ता दूर करनेके लिए ही नहीं कहा था, वह सचमुच ज़िन्दा रहना चाहता था। उसने ज़िन्दा रहनेका दृढ़निश्चय कर लिया था। उसको जीवनमें विश्वास था। जीवनसे विमुख होना उसके धर्मके विरुद्ध था। इसी कारण तो वह मौतसे इतना शांत-चित्त होकर खेल सकता था!

बूढ़ा सारे संसारमें अपनी विशेषताओंके लिए प्रख्यात था। कोई उसको पागल कहता, कोई चतुर राजनीतिज्ञ, कोई आत्मिक बलका मदारी, नंगा फ़क़ीर, उसको क्या-क्या उपाधियाँ न दी गई थीं। शासनने उसे विद्रोही ठहराकर बंदी कर दिया। उसके शत्रु उसे गद्दार, धूर्त, छली—न जाने क्या-क्या कहते थे, परन्तु उसके देशके करोड़ों मनुष्य उसके नामपर जीवन निछावर करते थे, उसकी उपासना करते थे।

मगर उसके देशवासी, स्वयं उसके मित्र और सहकारी उसकी अनेक बातें समझनेमें असमर्थ थे। वह कहता था—किसी जीवको दुख देना पाप है। उसने राष्ट्रको निःशस्त्र युद्ध करना सिखाया था, शत्रुको सत्य और अहिंसासे नीचा दिखानेका भेद बताया था। किसी परिमाणमें उसे इसमें सफलता भी प्राप्त हुई थी। मगर ऐसे समयमें जब चारों ओर संसारमें युद्धके देवताका राज हो, लहूकी नदियाँ बह रही हों, जब हत्या, अत्याचार और हिंसा मानव-जीवनके सिद्धांत बन चुके हों, उसका अहिंसाका उपदेश यदि मूर्खता नहीं तो कमसे कम हास्यास्पद अवश्य प्रतीत होता था। वह शत्रुको मारना नहीं, अपनाना चाहता था। वह बममार हवाई जहाज़ों, टैंकों, मशीन-गनों, और विषैली गैसों इत्यादिका सामना आत्मिक-बल और सत्यके

प्रदर्शनसे करना चाहता था ! वह मशीनोंकी भाँति सधे हुए, आत्मा और विचार-शक्तिसे वंचित, पाषाण-हृदय अत्याचारियोंकी मनुष्यताकी भावनाको जाग्रत करना चाहता था। कोई कहता वह महात्मा है, कोई कहता वह पागल है।

किसीको उसके आत्मिक-बलसे भले ही विरोध हो मगर उसके नेतृत्वमें किसीको संदेह न था। वह अपने देशकी स्वतंत्रताकी भावनाका प्रतीक था और उसके स्वतंत्रता-संग्रामका पथ-प्रदर्शक। उसने करोड़ों मनुष्योंको स्वतंत्रताके लिए कट जाना, मर जाना सिखाया था।

शासनने बूढ़े और उसके साथियोंको बंदी बना लिया। देशमें आगसी लग गई। शासनके अत्याचारका उत्तर जनताने हिंसासे दिया। प्राणका बदला प्राण और खूनका बदला खूनसे लिया। बूढ़ा वर्षोंसे क्रांतिकारी हिंसाके तूफ़ानको रोके हुए था। जब वह बंदी हो गया तो यह तूफ़ान नीति-नियमके समस्त बंधन भंग करके सारे देशमें फैल गया।

समाचार-पत्रोंमें लम्बे-चौड़े वक्तव्य प्रकाशित हुए। लेख लिखे गए। पुस्तकें छापी गईं! और उन सबमें यह घोषित किया गया कि इस अराजकताका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उस नंगे बूढ़े फ़क़ीरपर है। उसके जीवनभरके कामको मटियामेट करनेका प्रयत्न किया गया। संसार यह सुनकर चकित रह गया कि अहिंसाकी आड़में यह बूढ़ा हिंसाका प्रचार करता था। और बूढ़ा स्वयं बंदी था। इन आरोपोंको पढ़कर उसकी आत्मा विह्वल हो उठी। उसने अपने व्यक्तित्वको क्रोध और घृणासे सर्वथा मुक्त कर लिया था। वह अपने शत्रुओंसे भी प्रेम करता था। उसका हृदय क्षोभ और दुःखसे भर गया था। उसे मालूम न था कि उसके साथ इतना घोर अन्याय किया जायगा। मगर वह बंदी था। न कोई पत्र लिख सकता था, न कोई वक्तव्य प्रकाशित कर सकता था। संसारकी दृष्टिमें वह अपने सिद्धान्तोंकी मर्यादा रखे, तो किस प्रकार? अपने शरीरको भूखकी सज़ा देकर, मौतका सामना करके। उसके पास तो केवल एक ही उपाय था जिसे वह इससे पूर्व भी पाँच बार

प्रयोगमें ला चुका था।

उसने देशके शासकको लिखा, "आपने और आपके पदाधिकारियोंने मुझपर अद्भुत आरोप लगाए हैं, यद्यपि आपको भलीभाँति मालूम है कि मैं चालीस वर्षोंसे सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोंका प्रचार कर रहा हूँ। और मुझे उत्तर देनेका कोई अवसर नहीं दिया गया। इस दशामें मेरे लिए केवल एक ही मार्ग है। और वह अनशन करके तप करना है। अतएव मैंने निश्चय किया है कि मैं इक्कीस दिन तक अनशन करूँगा। मेरा अभिप्राय-आत्म-हत्या करना नहीं है और न राजनैतिक उद्देश्योंके लिए आपको इस प्रकार बाध्य करना, वरन् अन्यायके विरुद्ध उस अदालतमें अपील करना है जो आपकी और इस संसारकी अदालतोंसे ऊपर है। मेरी यदि इस बीचमें मौत हो गई तो मैं अपनी निर्दोषतापर विश्वास रखते हुए इस संसारसे विदा हूँगा। आनेवाली पीढ़ियाँ निर्णय कर सकेंगी कि कौन न्याय-पथपर था, आप या मैं? संसारके एक प्रतिभाशाली साम्राज्यका प्रतिनिधि या मुझ जैसा एक फ़क़ीर, जो अपने देश और समस्त मानवताका एक तुच्छ सेवक है।"

और अब उस ऐतिहासिक व्रतके सात दिन बीत चुके थे। बूढ़ा प्रतिक्षण दुर्बल होता जा रहा था। चालीस करोड़ आत्माएँ उसकी प्राण-रक्षाके लिए प्रार्थना कर रहीं थीं। मौत प्रतीक्षा कर रही थी, कब इस अमर आत्माको समेटकर परलोक ले जाए।

मगर बूढ़ा पूर्ववत् हँसता रहा।

एक शहर

ज़िन्दगी और मौत।

भीषण द्वंद्व था।

मौत लश्करके लश्कर लेकर साथ आई थी। बममार हवाई-जहाज़, सैकड़ों मीलकी मार करनेवाली तोपें, मशीनगनें, राइफ़लें, बन्दूकें और रिवाल्वर, विषैली गैस, और सिपाहियोंके दल-बादल। आत्मा और विचार

शक्तिसे वंचित सिपाही, जिनको ज़िन्दगीके बदले मौतकी शिक्षा दी गई थी, जिनके हृदयको मनुष्यता, दया और सहानुभूतिके भावोंसे इस प्रकार रिक्त कर दिया गया था जैसे नींबूको लोहेकी उँगलियोंसे निचोड़कर सारा रस निचोड़ लिया जाता है।

एक शहर, नौजवान शहर, मौतका सामना कर रहा था।

एक शहर, फ़ौलादका शहर, जिसका नाम उस देशके सबसे बड़े सूरमा के नामपर रखा गया था, अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे शत्रुका सामना कर रहा था। पूरा शहर युद्धक्षेत्रमें उतर आया था—स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे, सैनिक, वायुयान-संचालक, इंजीनियर और डाक्टर, लेखक और कवि, पत्रकार और कलाकार, मोटर-ड्राइवर और बावर्ची, अफ़सर और मज़दूर।

शहर नदीके तटपर बसा हुआ था, जिसका पानी खूनसे मिलकर लाल हो गया था।

शहर मीलोंतक फैला हुआ था—फैक्ट्रियाँ, कारखाने, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, मकान, दुकानें, सड़कें, बाग। और आज प्रत्येक स्थानपर विनाशके चिन्ह ही दिखाई देते थे। जहाँ कभी ज़िन्दगीका राज था, वहाँ आज मौत का राज था। बमोंने आग लगा दी थी। शहरके कोने-कोने से धुएँके बादल उठकर आकाश की ओर जा रहे थे।

नगर-निवासी महीनोंसे अपनी रक्षा और अपने नगरकी रक्षाके लिए लड़ रहे थे। उनके घर बम-वर्षासे खंडहर होचुके थे। वह रात-दिन खाइयोंमें रहते थे। हर समय शहरपर गोलों और गोलियोंकी बौछार होती रहती थी। वह न सोते थे, न आराम करते थे। न हँसते थे, न मुस्कराते थे। कपड़े फट गये थे। अनेकों बार बिना भोजनके ही दिन बीत जाते। भूख-प्यासका कोई अंतर नहीं रहा था। दिनमें धुएँके बादलों में सूरज छिपा रहता और रातको आगकी लपटोंका प्रकाश होता। दिन, तारीख और समय इनका कोई अर्थ ही नहीं रह गया था।

इस शहरका इतिहास अनोखा था। एक समय था जब यह एक

साधारण-सा क़स्बा था। उसका नाम एक क्रूर और अत्याचारी राजा के नामपर रखा गया था। उन दिनों संसारके और शहरोंकी भाँति यहाँ भी धनिक भोग-विलास करते थे और ग़रीब मज़दूर कठिन परिश्रम करने पर भी भूखों मरते थे। फिर क्रांतिका तूफ़ान उठा, मज़दूर और किसानोंने तख्त और ताजको मिट्टीमें मिला दिया। जनताका राज स्थापित किया। मगर अत्याचारी और क्रूर प्रतिक्रियावादी और ज़मींदार सहज ही मानने वाले न थे। घमासान युद्ध हुआ। गृह-युद्धकी आग सारे देशमें भड़क उठी। इसी नगर में, इसी नदीके तटपर इस क्रांतिकारी युद्धका एक निर्णयात्मक संग्राम हुआ। साम्राजियोंने नगरपर अधिकार कर लिया था। मगर एक योद्धाके सेनापतित्वमें क्रांतिकारी सेनाने आक्रमण किया, नगर-निवासी दमन और अत्याचारके विरुद्ध उठ खड़े हुए और प्रतिक्रियावादियोंकी घोर पराजय हुई। शहरका नाम बदलकर उसी योद्धाके नामपर रखा गया जिसने क्रांति और स्वतंत्रताके लिए उसकी शत्रुके पंजेसे रक्षा की थी।

पच्चीस वर्षोंमें इस नगरकी कायापलट हो ग.। जो मज़दूर अँधेरे, गंदे, गिरे-पड़े मकानोंमें रहते थे, उनके लिए भव्य और सुंदर घर बनवाए गए। उनके बच्चोंके लिए स्कूलों और कालेजोंके दरवाज़े खोल दिए गए। नवाबों, ज़मींदारों, पूँजीपतियोंके महलोंमें मज़दूरोंके लिए क्लब और अस्पताल खोले गए। नए कारखानोंकी स्थापना हुई। रेलें, ट्रामें, बिजली, तार, टेलीफोन, पार्क, थिएटर, सिनेमा, पुस्तकालय—और हरएक चीज़ काम करनेवालोंके लिए। जीवनकी एक लहरसी शहरमें दौड़ गई, न सिर्फ़ इस शहरमें बल्कि उस देशके हरएक शहरमें, हरएक गाँवमें। हज़ारों वर्षोंके बाद जनताने अपने संसारकी सम्पत्तिपर स्वयं अधिकार कर लिया। अत्याचारियों और आततायियोंको मार भगाया। मज़दूर-राजकी स्थापना हुई। ज़िन्दगीकी विजय हुई।

मगर मृत्यु और विनाशके देवता कब चुप बैठते हैं। संसारमें सुख,

शांति, उन्नति और जनताकी सम्पन्नता देखकर वह जल जाते हैं। कोशिश करते हैं कि फिर ज़िन्दगीपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लें, न्याय पर अन्याय, प्रगतिपर प्रतिक्रिया, प्रकाशपर अंधकार। मौतकी सेनाओंने ज़िन्दगीके इस उज्ज्वल प्रतीकपर आक्रमण कर दिया। संसारकी शांति युद्धाग्निमें जल उठी।

विनाश और संहारका तूफ़ान तीव्रगतिसे आगे बढ़ा। विज्ञानकी सहायतासे पिशाच-बुद्धियोंने ऐसे-ऐसे हथियार बनाए कि उनके सम्मुख कोई शक्ति न ठहर सकती थी। नगरके नगर उजाड़ दिए गए, खेतियाँ जला दी गईं, लाखोंके प्राण गए, स्त्रियाँ विधवा हो गईं, बालक अनाथ हो गए। ज़िन्दगीके क़दम उखड़ गए।

मगर इस शहरपर ज़िन्दगीने फिर पैर जमाए। मौतके लश्करोंको रुकना पड़ा और शत्रुने शहरको घेर लिया। ज़िन्दगी मौतके तूफ़ानोंमें घिर गई।

और इसी प्रकार महीनोंसे युद्ध हो रहा था। शत्रु अपनी अपार शक्तिको लिए शहरके सामने पड़ा था। शहरपर बमोंकी वर्षा हो रही थी। चारों ओर आग और विनाशके दृश्य दिखाई देते थे। शहर जल रहा था। और मौत विजय-गर्वसे मुस्करा रही थी।

ज़िन्दगी चुप थी। मगर ज़िन्दगीके क़दम दृढ़ थे।

एक बच्चा

ज़िन्दगीने अपने अस्त्र उठाए।

प्रातःकाल डाक्टर आया तो उसने देखा कि बच्चा पीड़ासे कराह रहा है। उसका रंग काला था, फिर भी उसके चेहरेपर रक्तके अभावके कारण पीलापन झलक रहा था। साँस लेनेमें भी कठिनाई हो रही थी।

"नर्स!"

"जी डाक्टर साहब!"

"ऑक्सीजन!"

मौत गैसका जीवनप्रद सिलिन्डर आते देखकर घबरा-सी गई। नली लगा हुआ फ़ीफ़ बच्चेकी नाकपर रख दिया गया। साँस सुगमतासे आने लगी। मगर चेहरेपर पीलेपनकी झलक पूर्ववत् थी।

"नर्स!"

"जी डाक्टर साहब!"

"............"

"मैं हाज़िर हूँ।"

"तुम्हारे खूनकी परीक्षा हो चुकी है।"

"जी हाँ, इस बच्चेके खूनका इम्तहान कराके मुक़ाबिला भी करा लिया है।"

"तुम्हें अपना खून इस काले बच्चेको देनेमें कोई आपत्ति तो नहीं है।"

"जी नहीं, मैं जाति और वर्णके भेदको नहीं मानती।"

"शाबाश!"

नर्सके गोरे कोमल हाथमें एक मोटी सुई घुसा दी गई। एक रबड़की नलीमें से होकर लाल-लाल खून एक बोतलमें इकट्ठा होता गया। बच्चा अचरजसे यह सब देखता रहा, जैसे कोई नई तरहका खेल हो, फिर उसके हाथपर से आस्तीन उलट दी गई।

"डरना मत शाबाश, बस ज़रा-सा दर्द होगा।" हाथमें एक हल्की-सी टीस हुई और बोतलमें खून कम होने लगा।

मौत परेशान हो गई। उसकी सेनाके पाँव उखड़नेवाले ही थे कि उसने एक नया दाँव खेला। बच्चेके कानमें कहा, "ज़िन्दा रहनेसे क्या लाभ? संसारमें काले रंगवालोंके लिए दुःख ही दुःख है। गंदे-सड़े मकान, गोरोंकी गालियाँ और ठोकरें, और फिर कोई ज़हरीली शहदकी मक्खी काट लेगी। जीवित रहनेसे कोई लाभ नहीं। आकाशपर सितारे तुम्हें बुला रहे हैं और भगवान तुम्हारी प्रतीक्षामें खड़े हैं।"

खून अन्दर जा चुका तो डाक्टरने पूछा, "क्यों बेटा, अब कुछ अच्छा लगता है।"

"मैं जिन्दा नहीं रहना चाहता, डाक्टर साहब। मुझे सितारे बुला रहे हैं, सितारे और भगवान्।"

"नहीं बेटा! ऐसी बातें नहीं करते। तुम जल्दी ही अच्छे हो जाओगे।"

मगर बच्चेको अपने कटु अनुभव याद आ रहे थे। उसकी समझमें न आता था कि भीख माँगने और गालियाँ खानेके लिए उसको जिन्दा रखनेपर क्यों सब लोग तुले हुए थे। उसने डाक्टरीकी ओरसे मुँह मोड़ लिया।

डाक्टरने नर्ससे कहा, "जब तक रोगी सहयोग न दे, हम उसे कैसे अच्छा कर सकते हैं! निरोगी होनेके लिए दवासे ज्यादा जिन्दा रहनेकी इच्छाकी आवश्यकता है।"

यह सुनकर मौत फिर विजय-गर्वसे मुस्कराई। "हर जगह मेरी ही जीत है।"

एक बूढ़ा

एक बूढ़ा मर रहा था। एक क़ौम जिन्दा हो रही थी। आदमीका शरीर भी एक अनोखी मशीन है। जब तक सब अंग मिलकर अपना-अपना काम न करें पुर्ज़ोंमें विकार पैदा हो जाते हैं। पेटमें यदि भोजन न जाय तो दुर्बलताके अतिरिक्त शरीरमें विष भी पैदा होने लगता है।

बारहवें दिन डाक्टरोंने बूढ़ेके मूत्रका निरीक्षण किया तो उसमें एक शंकाजनक विषैला पदार्थ पाया। यदि तीन दिन और इसी तरह बीते तो जीवनकी कोई आशा नहीं।

एक डाक्टर जो बूढ़ेका मित्र भी था, उसके पास जाकर बोला, "देखिए, इस समय मैं एक डाक्टर हूँ, न आपका मित्र, न शिष्य। मेरा

कर्तव्य हो जाता है मनुष्यके प्राण बचाना। आपके शरीरमें खाद्य-पदार्थ न जानेके कारण विष फैल रहा है। आपके प्राण संकटमें हैं। इस कारण मुझे आपको अनशन तोड़नेपर बाध्य करना होगा।"

बूढ़ा कुछ सोचकर धीरेसे मुस्कराया। ताक़त इतनी कम हो गई थी कि वह अब ज़ोरसे बोल भी न सकता था। डाक्टरने अपने कान सूखे होंटोंके पास लगा दिए।

"डाक्टर, यह मेरी मर्यादाका प्रश्न है।"

"नहीं, यह आपके प्राणोंका प्रश्न है।"

"अच्छा, कबतक अवकाश दे सकते हो।"

"चौबीस घंटे। यदि कल प्रातःकाल भी मूत्रमें यह विषैला पदार्थ निकला तो आपको व्रत भंग करना ही पड़ेगा।"

"अच्छा भाई, तुम्हारी इच्छा।" और यह कहकर बूढ़ेने आँखें बंद कर लीं और मन ही मन प्रार्थना की, "हे ईश्वर! मेरी लाज तेरे ही हाथ है।"

बूढ़ेके व्रतपर उस समय न केवल एक देश बल्कि सारे संसारका ध्यान केंद्रित था। सुदूर देशोंके समाचार पत्रोंके सम्वाददाता हवाई जहाज़से इस व्रतकी रिपोर्ट भेजनेके लिए आए हुए थे। हर चंद घंटोंके बाद डाक्टर बूढ़ेके स्वास्थ्यके संबंधमें सूचनाएँ दे रहे थे। चालीस करोड़ आँखें उधर ही लगी हुई थीं। तार, टेलीफोन, समाचार-पत्र, प्रत्येक सम्भव साधनसे प्रतिक्षण समाचार सारे देशमें फैल रहे थे।

एक बूढ़ा मर रहा था। एक क़ौम ज़िन्दा हो रही थी।

देशके कोने-कोनेमें राष्ट्र-प्रेमियोंके क्रांतिकारी प्रदर्शन, सभाएँ, जुलूस, प्रस्ताव, शासकोंके नाम तार, बूढ़ेकी रिहाईकी माँग, समाचार पत्रोंमें लेख, राजनैतिक पार्टियोंके नेताओंके वक्तव्य। प्रत्येक हृदयमें धड़कन, उत्साह और बूढ़ेके प्रति प्रेम था।

दूसरे दिन प्रातःकाल समाचार मिला कि स्वयं शत्रुके दलमें फूट पड़

गई। बूढ़ेके तीन देशवासियोंने जो अबतक विदेशी शासकोंके अनन्य सेवकोंमें से थे त्यागपत्र दे दिए।

बूढ़ेको लेटे-लेटे यह सब समाचार मिल रहे थे। उसका जीवन-ध्येय सफल हो रहा था। उसने अपने देशका और अपने सिद्धान्तोंका संसारके सामने फिर मस्तक ऊँचा कर दिया था। उसने अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर फिर पाँसा जीत लिया था। मगर उसके तन और मनमें एक भीषण द्वंद्व मचा हुआ था। उसने डाक्टरको वचन दिया था कि यदि प्रातःकाल तक विषैले पदार्थ दूर न हुए तो वह व्रत तोड़ देगा। व्रत टूट जाएगा। उसका सब किया-कराया काम व्यर्थ हो जाएगा। उसकी मर्यादा मिट्टीमें मिल जाएगी। दुनिया उसपर हँसेगी, उसको इसकी कोई विशेष चिन्ता न थी। पर दुनिया उसके सिद्धांतों पर हँसेगी। नहीं, वह ऐसा कभी न होने देगा। उसने आँखें बंद कर लीं। यद्यपि उसका शरीर कमजोर होता जारहा था फिर भी वह अपने निश्चयके बलसे विषका मुकाबिला करनेके लिए तैयार होगया। मगर, क्या शरीरकी रासायनिक क्रियाओंको एक सत्तर वर्षके बूढ़ेका आत्मबल रोक सकता था?

मौत जिन्दगीकी आशावादितापर हँस रही थी।

एक शहर

मौतके लशकर बराबर बढ़ते चले आ रहे थे, मगर जिन्दगीने हार न मानी।

शहरकी सीमाओंपर शत्रुने अधिकार कर लिया था। स्वयं शहरके आधे भागमें घोर युद्ध होरहा था। हर सड़क, हर गली, हर मकानपर वीर डटकर मुकाबिला कर रहे थे, पग-पगपर रक्त बहा रहे थे, प्राण दे रहे थे। औरतें और बच्चे बन्दूकें लिए लड़ रहे थे। शत्रुके हजारों सैनिक काम आए। मगर उनके टैंकों, वायुयानों और तोपोंका लौह-प्रवाह बढ़ता ही चला आ रहा था।

मौत प्रसन्न थी। हँस रही थी। "कुछ ही दिनकी बात है। विजय निश्चित है।"

मगर ज़िन्दगीने धीरज नहीं छोड़ा था। नगर-निवासी सौगंध खा चुके थे कि शत्रुके टैंक यदि आगे बढ़ेंगे तो हमारी लाशोंपर से होकर। खून और माँसकी बनी हुई एक चट्टान थी जो दुश्मनकी राहमें खड़ी हुई थी।

वह कौन-सी प्रेरणा थी जो नागरिकोंका साहस बढ़ा रही थी? स्वतन्त्रताकी भावना, पारस्परिक समानता और मनुष्यताकी भावना।

एक सैनिकसे किसी विदेशी पत्रकारने पूछा, "वह कौन-सी शक्ति है जो तुम्हें अबतक शत्रुकी अपार फ़ौजके विरुद्ध लड़नेपर मजबूर करती है?"

सैनिकने उत्तर दिया, "भाई, मेरी उमर चालीस वर्षकी है। तुम्हें मालूम है, मेरा जन्म कहाँ हुआ था।—इसी नगरमें, सूअरोंके अस्तबलमें। वहीं सूखी घासके एक ढेरमें एक सुअरीने बच्चे दिए थे और वहीं मेरी माँने मुझे जन्म दिया था। मेरा बाप एक ज़मीदारका दास था। मेरी माँ मुझे जन्म देनेके तीसरे दिन ही कामपर जानेके लिए बाध्य की गई। मैं वहीं सुअरनीके पास पड़ा रहता था और सरदी लगती तो उन सूअरके बच्चोंके साथ उनकी माँके गर्म शरीरसे लिपट जाता। यह था हमारा जीवन उस वक़्त। और फिर क्रांति हुई और काया पलट हो गई। हम मनुष्य बन गए। हमारे लिए सुन्दर मकान बने, अस्पताल और कॉलिज। मेरा लड़का और लड़की यूनिवर्सिटीमें पढ़ते हैं। समझे, यह है क्रांतिकी देन! इसी क्रांतिकी रक्षा करनेके लिए हम आज अपने प्राण दे रहे हैं। क्योंकि हम जानते हैं कि अगर दुश्मन जीत गया तो मज़दूरों और किसानोंकी दशा फिर पशुओं, कुत्तों और सूअरोंसे बदतर हो जाएगी। यह जीवन और मौतका सवाल है, भाई।"

शहरके मर्दों, औरतों और बच्चोंकी दीवार अटल खड़ी रही।

और फिर एक दिन समाचार मिला कि उत्तरकी ओरसे और सेनाएँ

आरही हैं। शहरमें हरएक आदमीके मुँहपर जीवन और प्रसन्नताके चिन्ह दिखाई देने लगे।

साहस बढ़ने लगा। सीने तन गए।

मौतके लश्करके पाँव उखड़ गए। मौत घबरा-सी गई।

एक बच्चा

नर्स चिन्तित थी। उसकी समझमें न आता था कि किस तरह काले बच्चेकी जीवित रहनेकी इच्छाको जगाए।

दिनभर वह करवट लिए दीवारकी ओर मुँह किए पड़ा रहता था। ऑक्सीज़न और नकली खून देनेसे उसकी जान बच गई थी। इन्जेक्शनोंने घावके ज़हरका प्रभाव कम कर दिया था। मगर उसके निश्चय-बलने जीवनसे असहयोग कर रखा था। और वह धीरे-धीरे मौतकी अन्धकारमय गहराईयों की ओर फिसलता जारहा था।

काले बच्चेके नन्हें दिमाग़में यह विचार समाया हुआ था, "यह गोरोंकी दुनिया है, एक काले आदमीके लिए यही उचित है कि वह मर जाए।" तमाम गोरी जातियोंके प्रति उसके हृदयमें सिर्फ़ नफ़रत और ग़ुस्सा था। डाक्टर और नर्स दोनों उसी वर्णके थे। इसी कारण वह उनकी सूरत भी देखना नहीं चाहता था। ज़बरदस्ती दवा पिलाते, तो पी लेता। इन्जेक्शनकी तकलीफ़ सह लेता। मगर पास बैठकर नर्स उससे बात करनेकी, उसका दिल बहलानेकी कोशिश करती तो वह कोई उत्तर न देता और दीवारकी ओर मुँह कर लेता।

मगर नर्सने हिम्मत न हारी थी। वह ज़िन्दगीकी सेवा करनेवाली एक वीर योद्धा थी। उसका कर्तव्य था मौतका मुक़ाबला करना। इसके अलावा स्वयं उसके कोई संतान न थी। उसके दिलमें हर बच्चेके लिए, चाहे वह गोरा हो या काला, एक मातृ-प्रेम था। हरएक बच्चा उसका बच्चा था। उस काले बच्चेको भी वह अपना बच्चा मानती थी। उसने फ़ैसला कर लिया

था कि वह उसे मरने न देगी।

एक दिन नर्सको बैठे-बैठे एक नया उपाय सूझा। उसने अपना छोटा-सा रेडिओ उठाकर काले बच्चेके कमरेमें उसके पलंगके पास लगा दिया। बटन दबाते ही कमरा संगीतकी लहरोंसे भर गया। बच्चेको संगीतसे विशेष आकर्षण था। कदाचित् इसका कारण यह था कि उसकी जातिको सदैव ही संगीतसे विशेष रुचि रही थी। जैसे ही उसने संगीतकी ध्वनि सुनी, उसने दीवार की ओरसे मुँह फेरकर दूसरी ओर कर लिया। नर्स एक लकड़ीके बक्सके पास खड़ी मुस्करा रही थी। आवाज़ उसी बक्समें से आ रही थी। कितनी सुरीली, कितनी मधुर!

कितने ही दिनोंके बाद बच्चेकी आँखोंमें जीवनकी जोत दिखाई दी। वह मुस्करा दिया। नर्सको ऐसा मालूम हुआ जैसे उसे किसीने संसारकी सबसे क़ीमती चीज़ दे दी हो।

मधुर संगीतकी लहरें मन्द गतिसे कमरेमें प्रवाहित हो रही थीं। बच्चेने अनुभव किया जैसे किसीने उसकी आत्माके घावोंपर प्रेम-भरे हाथोंसे मरहम लगा दिया हो। उसने आँखें बंदकर लीं कि नैसर्गिक-संगीतका यह स्रोत सिर्फ़ कानोंके ज़रिए उसके सारे शरीरमें रिस जाय।

मगर थोड़ी देरमें संगीतका प्रोग्राम खत्म हो गया। एनाउन्सरकी आवाज़ आई, "अब हम आपको एक सुदूर देशमें ले जाते हैं, जहाँसे हमारा प्रतिनिधि आपको संसारके एक आश्चर्यजनक युद्धका समाचार सुनाएगा।" और फिर एक दूसरी आवाज़, जो पहली आवाज़की अपेक्षा धीमी थी और दूरसे आती हुई मालूम होती थी, सुनाई दी, "मैं जॉन स्मिथ बोल रहा हूँ। मैं एक युद्ध-संवाददाता हूँ। मैंने पिछले बीस सालोंमें आधी दर्जन लड़ाइयोंकी खबरें समाचार-पत्रों और रेडिओके द्वारा अपने देशवासियोंतक पहुँचाई हैं। प्रथम महायुद्ध, मंचूरियाका युद्ध, एबीसीनियाका युद्ध, स्पेनका युद्ध, चीन और जापानका युद्ध और अब यह द्वितीय महायुद्ध। मगर आज मैं आपको संसारके सबसे आश्चर्यजनक युद्धका हाल सुनाता हूँ। यह

हवाई जहाज़ों, तोपों, बन्दूकोंका युद्ध नहीं है । यह ज़िन्दगी और मौतका द्वन्द्व-युद्ध है और युद्धक्षेत्र एक बूढ़े आदमीका कमज़ोर शरीर है, जो सत्रह दिनसे अनशन कर रहा है......

नर्सने पूछा, "यह प्रोग्राम बदलकर कोई दूसरा संगीतका प्रोग्राम लगा दूँ ?"

काले बच्चेने कहा, "नहीं, नहीं । मैं उस बूढ़ेका हाल सुनाना चाहता हूँ ।" न जाने क्यों उसे ऐसा लग रहा था कि उस बूढ़ेकी ज़िन्दगीमें और उसकी अपनी ज़िन्दगीमें एक निकट संबंध है ।

एक बूढ़ा

मौत एक बार पीछे हटकर फिर पूरी ताक़तसे हमला कर रही थी ।

डाक्टर बूढ़ेके आत्मबलपर हैरान थे और खुश भी । मगर आगामी चार दिनोंके विचारसे उनको चिन्ता थी ।

मूत्रमें जो विष पैदा होने लगा था, वह आपसे आप बिना किसी दवाके, बिना किसी खाद्य पदार्थके दूर हो गया था । वैज्ञानिक हैरान थे । ज़िन्दगी गर्वसे माथा उठाए हुए थी । और बूढ़ा मुस्करा रहा था । उसको डाक्टर अनशन भंग करनेपर बाध्य न कर सके । वह अबतक ज़िन्दा था । उसका दिमाग़ अब भी काम कर रहा था । उसकी आँखोंमें अबतक चमक थी । वह जवाब देनेमें अब भी वही फुर्ती दिखाता, जिसके लिए वह प्रसिद्ध था ।

मगर सत्रह दिनके अनशनका असर होना ज़रूरी था । हृदय क्षीण होता जारहा था, उसकी गति नाममात्रकी शेष रह गई थी । डाक्टर ओल लगाकर देखते तो ऐसा मालूम होता जैसे किसी घड़ीमें चाबी खतम होरही हो और उसकी गति इतनी मंद पड़ जाय कि प्रतिलगा रुक जाने की शंका हो ।

मौतको अपनी विजयका फिर निश्चय हो चला था । मगर ज़िन्दगीने

हिम्मत न हारी थी।

एक बूढ़ा मर रहा था। एक क़ौम ज़िन्दा हो रही थी।

देशके कोने-कोनेमें, महलोंमें और झोपड़ियोंमें, क्लबोंमें और चौपालों-पर, रेलगाड़ियोंमें, बैलगाड़ियोंमें, हर जगह बस एक चर्चा, एक विचार, एक आशा, एक आराधना—बूढ़ेके प्राण बच जायँ। वह अपनी कठिन परीक्षामें सफल हो।

मन्दिरोंमें और मस्जिदोंमें, शिवालयोंमें और खानकाहोंमें, गिरजोंमें और अग्यारियोंमें उसके प्राणोंके लिए प्रार्थना हो रही थी। नमाज़के बाद बूढ़ी मुसलमान औरतें गिड़गिड़ाकर ईश्वरसे प्रार्थना कर रही थीं, "ऐ रहीम और करीम, हमारी क़ौमके बूढ़े बापकी जान बख्श दे।" पूजा और गीता-पाठके बाद बूढ़ी हिन्दू औरतें भगवान्‌से प्रार्थना कर रही थीं, "हे भगवान्! तू बड़ा दयालु है, हमारे और हमारे देशपर कृपा कर।" बच्चे दो-दो वक़्त व्रत रख रहे थे कि खानेके पैसे बचाकर दान कर दें। विवाह और खुशियाँ, जलसे और समारोह, तीज-त्योहार सब उस समयतकके लिए स्थगित कर दिए गए थे जबतक कि बूढ़ेका व्रत सकुशल समाप्त न हो जाए।

बूढ़ा मर रहा था। उसका सिद्धांत, उसका धर्म ज़िन्दा हो रहा था। सारा संसार उसके विचारोंसे प्रभावित हो रहा था। उसकी किताबें, उसके लेखोंको ध्यानसे पढ़ा जारहा था। उसकी अजीबोग़रीब राजनीतिका संसारके शासकोंकी कूटनीति और स्वार्थसे मुक़ाबिला किया जारहा था। लोगोंको आश्चर्य था कि कौनसी शक्ति थी जो उस वृद्धावस्था और दुर्बलता की दशामें उस सत्तर बरसके बूढ़ेको जीवित रखे थी। बूढ़ेके सिद्धांतोंके साथ-साथ उसके राष्ट्रके स्वतन्त्रता संग्रामका भी प्रचार होरहा था। एक आदमीके अनशनने संसारके चतुर राजनीतिज्ञोंको चकित कर दिया था।

एक बच्चा

नर्स बहुत खुश थी।

-जबसे काले बच्चेके कमरेमें रेडिओ लगा था उसकी हालतमें आश्चर्यजनक

परिवर्तन होगया था। ऐसा मालूम होता था कि उसमें ज़िन्दगीके लिए एक नया उत्साह पैदा हो गया है। अब वह कभी दीवारकी ओर मुँह करके न लेटता। उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा न रह गया। वह खुशी-खुशी दवा पीता, इंजेक्शन लगवा लेता, डाक्टर और नर्स दोनोंसे हँसकर बात करता।

रेडिओके जादू भरे डिब्बेमें संगीतका स्रोत प्रवाहित होता और वह घंटों लेटा आँखें बन्द किए हुए उसकी मंद-मंद लहरोंमें बहता रहता। मगर जब बारह बजे एनाउन्सर कहता, "अब हम आपको एक सुदूर देशमें ले जाते हैं...." वह आँखें खोलकर तकियोंके सहारे लगकर बैठ जाता। न जाने क्यों उसे उस सुदूर देशके बूढ़ेसे इतना लगाव हो गया था। कदाचित इसका कारण यह था कि उसने युद्ध-सम्वाददातासे सुना था कि बूढ़ेको बच्चोंसे बहुत प्रेम है, या इस कारण कि बूढ़ा अपने जीवनभर गोरोंके एक शक्तिशाली शासनके विरुद्ध निःशस्त्र लड़ाई करता रहा है। उसका यह अनशन भी उसी लड़ाईका एक मोर्चा था। काले बच्चेने सुना था कि बूढ़ेने अपने देशके करोड़ों काले रंगके लोगोंको स्वाभिमानकी शिक्षा दी थी। स्वाभिमान, आत्म-विश्वास, स्वतन्त्रता, और सिद्धान्तोंके लिए लड़ जाना, मर जाना। इन बातोंको सुनकर काले बच्चेके हृदयसे निराशा और निरुत्साहके भाव दूर हो गए थे और वह सोचता, "मैं भी जब बड़ा हो जाऊँगा तो उस बूढ़की तरह अपने साथियोंको आज़ादीके लिए लड़ना और मरना सिखाऊँगा।"

मगर जब उसने रेडिओपर सुना कि बूढ़ेकी हालत खराब होती जा रही है और इक्कीस दिनके अनशनसे वह ज़िन्दा न रह सकेगा तो काले बच्चेको ऐसा मालूम हुआ कि उसके शरीरसे स्वास्थ्य और जीवन निकला जारहा है। उसका दिल बुझ-सा गया। वह बहुत देरतक अपने पलंगपर चुपचाप आँखें बंद किए पड़ा रहा। इस बीचमें रेडियो न जाने क्या-क्या कहता रहा। उसने कुछ न सुना। मगर फिर बंदूकें चलने और बम फटनेकी

डरावनी आवाज़ सुनकर वह घबराकर उठ बैठा। एनाउन्सर कह रहा था, "घबराइए नहीं, यह बम आपके घरसे छः हज़ार मील दूर फट रहे हैं। बेतार द्वारा हम सिर्फ उनकी आवाज़ आपतक पहुँचा रहे हैं ताकि आप इस युद्ध का न केवल समाचार ही सुन सकें, वरन् स्वयं अपने कानोंसे इस असली लड़ाईकी असली आवाज़ोंको भी सुन सकें। यह लड़ाई आपके घरोंसे बहुत दूर होरही है, मगर यह आपहीकी लड़ाई है। आपके सिद्धान्तोंके लिए आपकी आज़ादीके लिए, आपकी माँ-बहनोंकी इज़्ज़तके लिए लड़ाई लड़ी जारही है। लाल सेनाके यह वीर सैनिक जो गाते हुए युद्ध-क्षेत्रकी ओर जारहे हैं, यह आप ही के साथी हैं। आपके शत्रुको यह अपनी बलि देकर रोके हुए हैं, अपने प्राणोंकी बलि देकर यह आपके देशकी रक्षा कर रहे हैं। उनकी आवाज़ आपकी आवाज़ है।...."

और फिर काले बच्चेका कमरा एक उत्साहपूर्ण गीतसे गूँज उठा। लाल सेनाके सैनिकोंका गीत एक अपरिचित भाषामें था। वह उसका मतलब न समझ सकता था, मगर उनके स्वरोंमें वही तल्लीनता, वही उत्साह, वही अपनापन था, जो उसको अपने काले लोगोंके संगीतमें मिलता था। उसका जी चाहा कि वह भी उन सैनिकोंके साथ होता और उसी प्रकार गाता हुआ रणक्षेत्रकी ओर जाता।

"आइए, आपको हम उस शहरकी सैर कराएँ जो अपनी वीरताके कारण संसारके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा। वह शहर जो एक सालसे दुश्मनकी अपार फ़ौजी ताक़तके सामने डटा हुआ है। वह शहर जिसकी कोई इमारत ऐसी नहीं है, जिसे नुक़सान न पहुँचा हो। मगर जहाँके मर्द, औरतें और बच्चे अपने शहर और अपने देशकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए पग-पगपर प्राण दे रहे हैं, मर रहे हैं, पर पीछे नहीं हट रहे हैं...।"

रेडिओमेंसे गड़गड़ाहटकी आवाज़ आई। टैंकोंकी गड़गड़ाहट, हवाई जहाज़ोंकी डरावनी गूँज, गोलोंके धमाके, गोलियोंकी सनसनाहट, और काला बच्चा अपने घावकी पीड़ाको भूल गया। उसे ऐसा मालूम हुआ कि

वह एक अस्पतालमें नहीं है बल्कि उस शहरमें है जहाँ लाल सेना शत्रुके सामने डटी हुई है, और उसको विश्वास हो गया कि न लाल सेना पीछे हटेगी और न वह आप मौतसे हार मानेगा।

एक शहर

शहरसे मीलभर बाहर शत्रुकी सेनाएँ खाइयों में पड़ी थीं। वह वहाँ सालभर से पड़ी हुई थीं। बरसातमें पानी, कीचड़, जाड़ेमें बर्फ़ और खूनको जमा देनेवाली सरदी, क्या कुछ उनको सहन न करना पड़ा था? मगर जिस चीज़ने उनके क़दम उखाड़ दिए थे, उनके हौसले पस्त कर दिए थे, वह शहरवालों की हिम्मत थी। वह हथियारोंकी कमी होते हुए भी लड़ते ही जाते थे। दुश्मनकी सेनाके हर सिपाहीको ऐसा मालूम होता था जैसे उसका सामना मनुष्योंसे नहीं ऐसी दैवी शक्तियोंसे है जिनके विरुद्ध कोई अस्त्र काम नहीं देता।

एक बार नहीं, दो बार नहीं, दर्जनों बार, सैकड़ों बार शत्रुकी सेनाओं-ने शहरपर हमला किया था। हवाई जहाज़ोंसे बमबारी करके शहरकी ईंटसे ईंट बजा दी थी। टैंकोंके लौह-हाथियोंको साथ लेकर हमला किया था। शहरकी सीमाओंको विध्वंस करके शहरके बीचोंबीच पहुँच गए थे। मगर शहरवालों ने उनको फिर मार भगाया था और उन्हें दुबारा अपनी खाइयों में बड़ी-बड़ी तोपोंके साएमें शरण लेनी पड़ी थी। यह शहरवाले लड़ाई के नियमोंसे बिल्कुल अनभिज्ञ थे। उनको यह मालूम ही न था कि लड़ाईके नियमोंसे वह हार चुके थे। लड़े ही जाते थे, मरे ही जाते थे। और लड़ते भी तो किस ऊटपटांग तरीक़ेसे—न कोई बाक़ायदा वर्दीदार फ़ौजी टुकड़ियाँ, न टैंक, न हवाई जहाज़। बस, हरएक नागरिक एक बंदूक हाथमें लिए इस तरह लड़ रहा था जैसे यह उसकी अपनी लड़ाई हो। जब दुश्मनके टैंक और फ़ौजी टुकड़ियाँ सड़कोंपरसे होते हुए शहरके बीचमें पहुँच जाते, तो टूटे-फूटे मकान, हर खंडहर, हर दरवाज़े, हर खिड़की, हर सूराखमेंसे उनपर

गोलियोंकी बौछार होती और शहरवालोंके झुंडके झुंड क्रांतिकारी नारे लगाते हुए, अपनी जानकी परवाह न करते हुए, टैंकोंपर टूट पड़ते । भीषण और घमासान लड़ाई होती और दुश्मनकी सेनाको पीछे हटना ही पड़ता ।

और अब समाचार आया था कि लाल सेनाकी कई बड़ी टुकड़ियाँ शहरकी सहायताके लिए आ रही हैं । दुश्मनकी सेनाका जनरल घबराया हुआ था । न आगे बढ़ सकता था, न पीछे हट सकता था । उसकी फ़ौजें सालभरसे पड़ी हुई थीं, मगर यह कमबख्त शहर था कि हार मानता ही न था । ऐसा शहर न उसने कभी देखा था, न सुना था । पिछले तीन साल में विभिन्न देशोंमें दर्जनों शहरोंपर उसने और उसकी सेनाओंने हमला किया था और हरएक शहरपर थोड़ी बहुत लड़ाईके बाद अधिकार कर लिया था । पर यह शहर अनोखा था । जिसके रहनेवाले 'हार' शब्दसे परिचित ही न थे, हार मानना जानते ही न थे । और अब अगर पीछेसे लाल सेनाकी टुकड़ियोंने हमला कर दिया तो उसकी सेना तो चक्कीके दो पाटों बीच पिसकर खत्म हो जाएगी ।

उसने टेलीफ़ोनसे अपने देशके अत्याचारी शासकको समाचार भेजा कि अवस्था शोचनीय होती जा रही है, उसको इजाज़त दी जाय कि वह अपनी सेनाको पीछे हटा ले । उस शहरको जीतनेका ख्याल छोड़ दे ।

अत्याचारी शासक हजार मील दूर आरामसे अपने गरम कमरे गद्देदार कुर्सीपर बैठा हुआ थ । उसको तो बस एक ही धुन थी, "नहीं, इस शहरको जीतना ही चाहिए । चाहे कुछ भी हो जाय, चिन्ता नहीं, तुम लड़े जाओ ।"

जनरलने टेलीफ़ोन रख दिया ।

एक सिपाहीने, जो घबराया हुआ था, प्रवेश किया । उसके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही थीं, जैसे उसने दिन-दहाड़े भूत देखा हो । बड़ी कठिनाईसे वह कह पाया, "लाल सेनाने उत्तरकी ओरसे हमला कर दिया है ।"

एक और सिपाही दौड़ा हुआ आया, "शहरवाले हमारी खाइयोंपर टूट पड़े हैं ।"

एक बूढ़ा

बूढ़ेका अंतिम समय था। मौत सिरहाने खड़ी मुस्करा रही थी।

अनशनके बीस दिन बीत चुके थे। आज आखिरी दिन था। मगर आशंका थी कि कदाचित यह बूढ़ेके जीवन का अंतिम दिन हो। दिलकी गति नाममात्रको शेष रह गई थी। अत्यंत क्षीण हो गया था।

बूढ़ेके शत्रु, उसको बंदी करनेवाले, उसकी मौतकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनको विश्वास था कि केवल कुछ घंटों, कुछ मिनटोंकी देर है।

बूढ़ेको बंदी करनेवाले उसकी अन्त्येष्टि-क्रियाका प्रबंध कर रहे थे। चिताके लिए चंदनकी लकड़ियाँ मँगा ली गई थीं। कफ़नका प्रबंध हो गया था। समाचार-पत्रोंके लिए बूढ़ेकी मौतकी घोषणा भी लिखी हुई तैयार थी। "अत्यन्त शोकके साथ सूचित किया जाता है कि आज....बजे...." सिर्फ़ समयके लिए जगह छोड़ दी गई थी।

एक देशके दिलमें आशाका दीप बुझनेवाला था।

बूढ़ेकी आँखें कमज़ोरीके कारण बंद थीं। मगर जब खुलती थीं, उनमें वही चमक, वही ज़िन्दगी। मौतकी परछाईंका नाम नहीं, यद्यपि उसके शरीरमें ताक़त बिल्कुल न रह गई थी। ऐसा मालूम होता जैसे बूढ़ेकी सारी जान सिमटकर आँखोंमें आ गई है, जैसे बूढ़ेके जीवनका आधार शारीरिक शक्तिपर है ही नहीं।

बूढ़ेने आँखें खोलीं और पूछा, "क्या समाचार है।" उसको बताया गया, उसको बंदी करनेवाले उसकी अन्त्येष्टि-क्रियाका प्रबंध कर रहे हैं। बूढ़ेकी आँखें हँसने लगीं।

मौत घबरा गई।

पिछले कुछ घंटोंमें मौतने एकके बाद एक कई हमले लगातार किए। हृदयकी गति प्रायः रोक दी, शरीरकी शक्ति नष्ट कर दी, चेतनाको हर लिया, मगर एक अमर आत्मा, एक निर्भीक हृदयके विरुद्ध मौतका कोई भी अस्त्र काम न आया।

इक्कीस दिन पूरे हो गए। बूढ़ेने आँखें खोलीं। उसकी आँखें मुस्करा रही थीं।

बूढ़ेने अपनी पत्नीके हाथसे संतरेके रसका एक गिलास पिया।

बूढ़ेके शत्रुओंने अन्त्येष्टि-क्रियाकी सामग्री चुपकेसे हटवा दी।

मौतने अपना बोरिया-बिस्तर सँभाला।

एक शहर

शत्रु लाल सेनाके घेरेमें फँस गया। हथियार डाल देनेके सिवाय कोई चारा न था। शहरके खंडहर विजय और हर्षके नारोंसे गूँज उठे।

मौतने अपने कान बंदकर लिए।

एक बच्चा

"नर्स!"

"हाँ, बेटा।"

"वह बूढ़ा इक्कीस दिनके अनशनके बाद भी बच गया?"

"हाँ, बेटा, कितनी खुशीकी बात है।"

"और नर्स।"

"हाँ बेटा!"

"वह शहर भी दुश्मनके घेरेसे निकल आया। दुश्मनकी सेनाएँ बंदी हो गईं?"

"हाँ बेटा, जो आज़ादीके लिए मरना जानते हैं, वह कभी नहीं हारते।"

"तो नर्स!"

"हाँ बेटा!"

"मुझे भी दवा पिला दो। मैं मरना नहीं चाहता।"



ज़ाफ़रान के फूल



"आओ, मुसाफ़िर यहाँ! इस चेनारके साएमें बैठ जाओ। मैं अभी पानी पिलाती हूँ......वह नीली-नीली लम्बी-सी मोटर है न तुम्हारी !...पंचर हो गया है !......कोई बात नहीं, अँधेरा होने से पहिले श्रीनगर पहुँच जाओगे।...अब बीस कोसकी तो बात है...नहीं बेटा, मुझे पानीकी क़ीमत नहीं चाहिए। और फिर पैसे लेकर करूँगी भी क्या ? मेरा है ही कौन !......अकेली जान हूँ, ज़िलेदारके खेतमें काम करती हूँ, चश्मेसे पानी भर लाती हूँ, धान कूट देती हूँ, अल्लाहका शुक्र है, मुट्ठीभर चावल तो मिल ही जाता है। पाँच ऊपर साठ उमर होनेको आई, और चाहिए ही क्या एक बुढ़िया को। आज मरी, कल दूसरा दिन। ...तुम भी कहते होगे किसी बकवासिनसे पाला पड़ा गया है......

"क्या कहा तुमने, बेटा !......नहीं नहीं, गुलेलालाका नहीं, यह ज़ाफ़रानका खेत है।......ठीक कहते हो, ज़ाफ़रानके फूल सचमुच कासनी ही होते हैं। अब भी आगे जाओगे तो दूसरे खेतोंमें कासनी फूल ही पाओगे। पर यहाँ इस साल ज़ाफ़रानके सुर्ख़ फूल ही खिले हैं।...... इसकी वजह क्या है ?......यह खुदाकी कुदरत है बेटा। पर तुम मैदानोंके रहनेवाले, आजकलके नौजवान, खुदा और उसके करिश्मोंको कब मानते हो। हम कश्मीरियोंको वहमी और बेवकूफ़ समझते हो कि ऐसी बातोंमें विश्वास रखते हैं।......

"अब इन फूलोंकी पूरी कहानी सुनकर क्या करोगे ?......अभी

तुम्हारी मोटर ठीक हो जायगी और तुम चले जाओगे और कहानी अधूरी रह जाएगी।......मोटरें तो इस सड़कपर से गुज़रती ही रहती हैं, बेटा। पल दो पल को ठहरतीं भी हैं तो फिर धूलके बादल उड़ाती चली जाती हैं। पर यह ज़ाफ़रानकी खेती यूँही खड़ी रहेगी। यहाँतक कि फूल चुननेका वक़्त आ जाएगा और यह लाल-लाल लहूकी बूँदों जैसे गुच्छे सुखाकर दिसावरको भेज दिए जाएँगे। और न जाने उनकी खुशबू कहाँ-कहाँ और किस-किसके दस्तरख़्वानोंसे महकेगी। और तुम्हारी तरह कितने ही आदमी सवाल करेंगे, इस ज़ाफ़रानका रंग लहूकी तरह सुर्ख़ क्यों है?......पर कोई न बता पाएगा। इसकी वजह तो सिर्फ़ मैं ही जानती हूँ।.........

"तुम मुझे पागल समझते हो न?......दीवानी बुढ़िया जो न जाने क्या-क्या बक रही है......है न?......फिर भी इस लाल ज़ाफ़रानका भेद जानना चाहते हो?......या अभी तुम्हारी मोटर दुरुस्त होनेमें देर है और तुम इस वक़्तको एक बुढ़ियाकी कहानी सुनकर ही काटना चाहते हो?......ख़ैर, जो भी हो। सुनना चाहते हो तो सुनो—

"हाँ तो इस खेतमें लाल ज़ाफ़रानके फूल तो इसी साल लगे हैं। पहले यहाँ भी कासनी फूल ही उगा करते थे। सारी वादीपर बहार आ जाती थी। ऐसा मालूम होता था कि कोई नई-नवेली दुल्हन ज़ाफ़रानी दुशाला ओढ़ लेटी है। और खुशबूसे यह सारा इलाक़ा महक उठता। सड़कपर मोटरें जो गुज़रतीं, उनकी धूलके बादलोंमें भी यह खुशबू फैल जाती और ऐसा मालूम होता कि ज़मीनसे आसमानतक हर चीज़ ज़ाफ़रानमें बसी हुई है।......

"तुम्हारी ही तरह एक और मुसाफ़िर भी एकबार इस खेतके फूलोंको देखने ठहर गया था।...कई बरसकी बात है। कोई बहुत ही सीधा मालूम होता था बेचारा। खेतमें जाकर फूलोंके बीचोंबीच खड़ा होगया और लगा नथने फुला-फुलाकर नाकसे साँस लेने, जैसे फूलोंको सूँघ न रहा हो, उनकी खुशबूको पी रहा हो। फिर आपसे आप ही कहने लगा, "अजीब

बात है। कोई भी नहीं आई !" मैंने पूछा, "कौन ? आखिर किसको खोजते हो" तो जवाब मिला, "हँसी, हँसी नहीं ाई। अजीब बात है हालाँकि किताबोंमें तो......।" तो बेटा तब पता चला कि वह बेचारा किताबोंमें यह पढ़कर आया था कि अगर ज़ाफ़रानके खेतमें खड़े होकर उसकी खुशबू सूँघो तो आपसे आप हँसी आने लगती है। इतनेमें खुदाका करना क्या हुआ कि सिरपर लकड़ियोंका गट्ठा उठाए ज़ाफ़रानी आ गई। मैंने जो उसे यह बात बताई तो वह लगी खिलखिलाकर हँसने। और वह अजनबी पहले तो खिसियाना हो गया, मगर जब उसने देखा कि ज़ाफ़रानीके क़हक़हे खत्म होने ही में नहीं आते तो लगा वह भी हँसने। उन दोनोंको हँसते देखकर मुझे भी हँसी आ गई और बादमें अजनबी कहने लगा कि 'देखो किताबोंका लिखा पूरा हुआ, क्योंकि ज़ाफ़रानके खेतमें हम तीन ही खड़े थे और तीनोंका हँसीके मारे बुरा हाल है।'

"मैं... ...भी कहाँसे कहाँ पहुँच गई।... ...बेटा बुढ़ापेमें दिमाग़ क़ाबूमें नहीं रहता। बात करते-करते बहक जाती हूँ।...हाँ, तो ज़ाफ़रानी... ...क्या कहा ?...ज़ाफ़रानी कौन ?... ...अभी तो बता चुकी हूँ, ज़ाफ़रानी मेरी बेटी थी।... ... नहीं बताया था ?...भूल गई हूँगी।... ...तो देख लो यादका यह हाल है, बेटा।... ...हाँ, तो उसका नाम असलमें नूराँ था, मगर गाँवमें सब उसे ज़ाफ़रानी कहकर पुकारते थे। बात यह थी कि बचपन ही से उसकी रंगत कुछ पीली-पीली सी थी। लड़कपनमें बच्चे-बच्चियोंके साथ कुदाल मचाया करती थी। वह उसे ज़ाफ़रानी कहकर छेड़ा करते और जितना वह चिढ़ती उतना ही वह और शोर मचाते—ज़ाफ़रानी ! ज़ाफ़रानी !! ... ... तुम जानो बच्चे किसीकी मानते थोड़े ही हैं।... ... हाँ, तो जब वह जवान हो गई तो गाँवके लड़के कहने लगे कि नूराँ जैसी खूबसूरत लड़की तो हमारे यहाँ एक भी नहीं है। उसकी रंगत तो ज़ाफ़रानके फूलकी तरह है। उसकी आँखें तो खिले हुए कँवल हैं। और न जाने क्या-क्या उलटी-सीधी बातें। मुझे तो कोई खूबसूरती व बदसूरती

नज़र नहीं आती थी। एक तो दुबली थी जैसे चश्मेके किनारे उगे हुए बेद—बेदे-मजनूँ। मैं कहती भला ऐसी लड़की बच्चे कैसे जनेगी? और फिर रंगत बिल्कुल पीली जैसे बीमार हो। दीदे फटे हुए, ऊपरसे यह कि तमीज़ नामको नहीं। न छोटेका ख्याल न बड़ेका। बस, हर वक़्त धमाचौकड़ीसे मतलब। मैं तो ज़रा मुँह न लगती थी। मगर तीन भाइयोंमें एक बहन थी, वह भी दो से छोटी। बाप और दोनों भाइयोंने लाड़-प्यारमें बिगाड़ रखा था। मैं सोचती ऐसी लड़कीसे कौन शादी करेगा। पर वहाँ तो जिसको देखो वह ज़ाफ़रानीसे ही ब्याह करनेपर तुला हुआ था।... ...तुम लड़कोंकी पसंद का भी कुछ ठीक नहीं, बेटा।......

"हाँ, तो पैग़ाम चारों तरफ़से आ रहे थे, यहाँतक कि ज़िलेदारने अपने लड़केका पैग़ाम भी दे दिया जो शहरके स्कूलमें पढ़ रहा था। भला, एक मामूली किसानकी बेटीको इससे अच्छा कौन वर मिल सकता था?... मैंने सोचा, ज़ाफ़रानीकी क़िस्मत खुल गई।...पर खुदाको तो कुछ और ही मंजूर था। उस साल जाड़ेके मौसममें निमोनियाका बुखार ऐसा चला कि घरवाला अल्लाहको प्यारा हो गया। खुदा उसे जन्नत नसीब करे। उसका मरना था कि हमारे घरमें तो आफ़तोंपर आफ़तें आनी शुरू हो गईं। मरने वालेने महाजनसे क़र्ज़ा ले रखा था। उसमें ज़मीनकी कुर्क़ी हो गई। इस पर भी मेरी हिम्मत न टूटी। तीन बेटे थे ना। मैंने सोचा रुपए-ज़मीनसे क्या होता है। मेरी असली पूँजी तो मेरी औलाद है। हाँ, एक ज़ाफ़रानीकी तरफ़से फ़िक्र ज़रूर थी कि ग़रीब और यतीम लड़कीको कौन ब्याहेगा।

"हाँ,...सैकड़ों बरससे हम इस गाँवमें रहते चले आरहे हैं। कभी फ़सल अच्छी होती है, और कभी बुरी। कभी बारिश होती है, कभी नहीं। कभी इतना पानी बरसता है कि खेतियाँ बह जाती हैं, कभी धूपमें जल जाती हैं, कभी बर्फ़में तबाह हो जाती हैं। कभी हम अपनी ज़मीन बोते हैं, कभी दूसरेकी। क़िस्मतकी ऊँच-नीच तो सबके साथ लगी ही रहती है। और बेटा, कभी-कभी राजाके अफ़सर ज़ुल्म भी करते हैं पर राजा-परजाका क्या मुक़ाबिला!

सब्र-शुक्रसे ज़िन्दगी किसी न किसी तरह बसर हो ही जाती है। मगर ठीक है, कलजुग है कलजुग—इसमें जो न हो थोड़ा है।...कई बरसकी बात है अभी घरवाला ज़िन्दा ही था कि एक दिन मैं धान कूट रही थी कि मेरा बेटा नूरू चिल्लाता हुआ आया, माँ, माँ! शेरे-काश्मीर आए हैं, शेरे-कश्मीर।" बस, इतना कह यह जा वह जा। मैं चिल्लाती ही रह गई कि अगर शेर आया है तो ज़िलेदार साहबको बोल—बंदूक लेकर आवें।......थोड़ी देरमें क्या देखती हूँ कि सारे ही गाँववाले क्या मर्द और क्या औरत और क्या बच्चे—भागे चले जा रहे हैं। मैंने सोचा शेरको पकड़ लिया होगा तभी तो औरतें बच्चे भी निडर होकर जा रहे हैं। चलो, मैं भी तमाशा देखूँ।...

"वह नक़्शा आजतक याद है मुझे। गाँवके उस सिरे पर...ए वह देखो उन दरख्तोंके पीछे—एक स्कूल है—अब तो मिडिल तक हो गया है, पर जब चार जमातों ही की पढ़ाई होती थी—हाँ, तो क्या देखती हूँ कि इसी स्कूलके सामने ठट्ठके ठट्ठ लगे हुए हैं, और सामने न शेर—न चीता, एक लंबा-सा गोरा-सा आदमी चबूतरेपर खड़ा ज़ोर-ज़ोरसे कुछ कह रहा है। लो जी यह था वह शेरे-काश्मीर।...मैंने कहा, 'लो ख्वामख्वाह ही डरा दिया। शेर तो शे यह तो कोई मामूली दरजेका सरकारी अफ़सर भी नहीं है। भला, अफ़सर कहीं गाढ़े खद्दरके मोटे-झोटे कुर्ते पहनते हैं!' जिस तरहसे वह ज़ोर-ज़ोरसे तक़रीर कर रहा था, उससे मैं समझी कि चाय बेचने वाला होगा। अब थोड़ी देरमें काला तवा रखके भोंपूवाला बाजा बजाएगा। फिर सबको मुफ़्त चाय बाँटेगा। इसी इन्तज़ारमें मैं भी वहाँ जाकर खड़ी हो गई। पर वह तो कश्मीरीमें बोल रहा था। और अगर वह चायवाला था तो उसकी चाय तो बहुत ही गरमागरम और खतरनाक थी। मैंने तो दो-चार बोल ही सुने थे कि डर गई। या अल्लाह! अब हमारे गाँवपर कोई न कोई मुसीबत ज़रूर आएगी। वह बातें ही ऐसी कर रहा था कि दिल दहल जाए। 'रियासतके असल मालिक राजा और उसके अफ़सर नहीं बल्कि हम किसान हैं। हमपर जुल्म हो रहा है। सबको मिलकर उसके खिलाफ़

आवाज़ उठानी चाहिए। आपसमें एक होना चाहिए। लड़के-लड़कियोंको पढ़ाना चाहिए। पढ़-लिखकर यह कश्मीरी क़ौमके नेता बनेंगे।' और न जाने क्या-क्या। मैंने तो पूरी बात सुनी भी नहीं। ज़ाफ़रानी मुँह फाड़े एक कोनेमें बैठी थी। तो मैं उसका हाथ पकड़कर घसीटती हुई चली कि घर जाके उसके बापसे इतना पिटवाऊँगी कि फिर कभी हिम्मत न पड़े ऐसी ख़तरनाक जगह क़दम रखनेकी। पर भीड़के आगे जहाँ बड़े-बूढ़े बैठे हुए थे वहाँ क्या देखती हूँ कि वह तो ख़ुद ही वहाँ बैठा, बड़े ग़ौरसे सुन रहा है। जल ही तो गई मैं।...

"तुम जानते ही हो तालाबके बीचमें एक पत्थर फेंक दो, सारे पानीमें हलचल मच जाती है। तो बेटा, यह शेरे-काश्मीर भी ऐसा ही एक पत्थर था जिसने हमारे गाँवके ठहरे हुए पानीको हिला दिया। वह दिन और आजका दिन है कि आराम-चैन, सुलह-शान्तिका नाम नहीं रहा। जिसको देखो बेचैन। जिसको देखो उसकी ज़बानपर शिकायत। हर एक अपनी ज़िन्दगीसे बेज़ार, उसको बदलनेपर तुला हुआ। मैं कहती, अरे तुम्हारे बाप दादाने भी तो अपनी उम्र इन्हीं राजों-महाराजोंके अफ़सरोंके ज़ुल्म सहते-सहते, रूखी-सूखी खाकर सब्र-शुक्रसे काट दी, तुममें कौनसे सुरखाबके पर हैं कि सारी दुनियाको बदलनेपर तुले हुए हो...पर मेरी कौन सुनता है, बेटा।...वह तो इस शेरे-काश्मीरने जादू ही ऐसा किया था...तुम मेरी बातोंसे उकता गए ना?...वह ज़ाफ़रानके लाल फूलोंका भेद? हाँ, हाँ बेटा, उसीकी बात तो कर रही हूँ। तुम भी कहते होगे कि यह कहाँका झगड़ा ले बैठी, पर बात यह है कि न गाँवके ठहरे, शांत तालाबमें शेरे-काश्मीरकी तक़रीरका वह पत्थर गिरता और न यह ज़ाफ़रानके फूल लाल होते...यह कैसे? यही तो बता रही हूँ, पर तुम तो बीचमें टोके ही जाते हो।

"हमारे गाँवमें उसकी तक़रीर हुए दो-चार महीने हुए होंगे कि ख़बर आई कि शेरे-काश्मीरको राजाने पकड़ लिया और जेलमें बन्द कर दिया। मैंने कहा, चलो अच्छा हुआ, अब सब उसकी सिखाई-पढ़ाई बातें भूल

जाएँगे और वादीमें सब्र-शुक्रके दिन फिर लौट आएँगे। पर उसकी गिरफ़्तारी पर तो उसकी चर्चा और भी बढ़ गई। जिसको देखो गुस्सेमें भरा हुआ है कि हमारे शेरे-काश्मीरको पकड़ लिया है। अब उस सरकारकी खैर नहीं। और ऐसी बातें करनेमें सबसे आगे मेरे ही लड़के। थोड़े दिनोंमें सुना कि वह छूट गया है। मैंने सोचा, यह भी अच्छा हुआ, नहीं तो यह लड़के सरकारको बुरा-भला कहते रहते और ज़िलेदार या कोई सरकारी अफ़सर सुन लेता तो लेनेके देने पड़ जाते।...

"...जब तक बाप ज़िन्दा रहा तब तक तो बेटे कुछ क़ाबूमें रहे। उसका मरना था कि जिसका जिधर मुँह उठा उधर चल दिया। ज़मीन तो जाती ही रही थी। बड़ा गुलाम नबी कहने लगा, मैं दूसरेकी ज़मीनपर मज़दूरी नहीं करूँगा। इससे तो बेहतर है श्रीनगर या गुलमर्गमें मुसाफ़िरोंका सामान उठाकर ले जानेका काम करूँ। दो-तीन रुपये रोज़ कमा सकता हूँ। मैंने लाख सिर पटका पर वह एक न माना। जब गया था तो सारे गाँवके लड़कोंमें सबसे ज़्यादा चौड़ा चकला सीना था उसका। छः महीने बाद दो-चार दिनको जो आया तो पहचाना मुश्किलसे जाता था। रंगत ज़ाफ़रानीसे भी ज़्यादा पीली। आँखें अंदरको धँसी हुई। माथेपर घाव जैसा गहरा गड्ढा जहाँ बोझा संभालनेके लिए मज़दूर पट्टा बाँधते हैं। और रातभर खाँसना। कभी कभी तो इतना कि होश न रहता। मैंने कहा 'यह क्या हालत हो गई है तेरी, क्या बीमार है?' बोला, 'नहीं माँ, बोझा उठानेवालोंके माथोंपर तो ऐसा गड्ढा पड़ा ही रहता है। रही खाँसी, तो वह उस दिन तुंगमर्गसे एक साहबका सामान गुलमर्ग ले जारहा था, बीचमें बारिश आ गई। भीगनेसे जुकाम खाँसी हो गई है।'.........चार दिनके बाद जब वह तुंगमर्ग गया तो मँझला नूरू भी साथ हो लिया। कहने लगा, 'माँ मैं भी शहरमें जाकर मज़दूरी करूँगा।' मैंने कहा, 'जो चाहे करो। जब तुम लोगों में माँ-बापका लिहाज़ ही नहीं रहा तो यहाँ रहनेसे क्या फ़ायदा?' नूरूको गए तीन-चार महीने हुए होंगे

कि ज़िलेदार ने शहरसे आकर कहा, 'गुलाम नबीकी माँ, अब तुम्हारी खैर नहीं है। तुम्हारा मँझला बेटा नूरू शेख अब्दुल्ला की पार्टीमें मिल गया है। दिनमें किश्ती चलाता है, रातको मज़दूरोंके जलसोंमें जा-जाकर तक़रीरें करता है।' मैंने कहा, 'बी मेंढ़कीको भी ज़ुकाम हुआ। वह शेरे-कश्मीर तो सुना मास्टर था पहले। इस किसानके छोकरेको देखो, यह भी चला है लीडरी करने।' पर मैंने सबसे कह दिया कि आजसे मेरे सामने उसका नाम न लेना। न वह मेरा बेटा, न मैं उसकी माँ।......

"...ज़ाफ़रानी ? लो, उसका तो ज़िक्र ही करना भूल गई। तो बेटा, अब हमारे घरमें रह ही गया था कौन—बस मैं, ज़ाफ़रानी और सबसे छोटा लड़का ग़फ़ूर। ज़ाफ़रानी अब बीस बरसकी बिनब्याही बैठी थी। घरमें पैसे हों तो उसकी शादीकी बातचीत करूँ। और यहाँ अव्वल तो आमदनी ही सिफ़र थी, उधर सुना कि समुंदर पार विलायतमें लड़ाई शुरू हो गई; मँहगाईका यह आलम हुआ कि बस कुछ पूछो मत। मैं और ज़ाफ़रानी दोनों काम करते थे। कभी किसीके खेतपर, कभी जंगलसे लकड़ियाँ चुन लाते, कभी पानी भरते, कभी ऊन कातते, तब जाके दो वक़्त चूल्हा जलता। मैंने कहा, 'ग़फ़ूर दस बरसका हो गया, लाओ उसको भी कामपर लगा दें।' पर ज़ाफ़रानी बोली, 'नहीं माँ, हम तो ग़फ़ूरको मदरसे पढ़ने भेजेंगे।' मैंने कहा, 'पागल हो गई है ?' पर वह एक न मानी। मुझसे बग़ैर कहे-सुने अगले दिन सवेरे खुद उसे ले जा मदरसेमें दाखिल करवा आई। जवान लड़की, अब मैं उसे कहूँ भी तो क्या कहूँ ? फिर उसके ब्याह न होनेका भी दुःख था। इस वास्ते मैं चुप ही हो गई।......मगर मेरा माथा ज़रूर ठनका कि आज इस घरका पहला लड़का मदरसे गया है, अब न जाने कौनसी मुसीबत आएगी। ...पर बेटा उस लौंडिया पर तो पढ़ाईका भूत सवार था। दिन रात भाईके पीछे पड़ी रहती।...मदरसेसे आता तो कहती घरपर बैठकर पढ़। हिसाबके सवाल पूछने मास्टरके यहाँ जा। यह कर, वह कर। उसका बस न चलता था कि किताबें घोलकर ग़फ़ूर को पिला दे।...

"...जिस घरमें बेरीका पेड़ होता है, बेटा, वहाँ पत्थर तो आते ही हैं।...बीस-इक्कीस बरसकी लड़की, फिर शकल सूरतमें हूरका बच्चा नहीं तो कानी मेंगी भी नहीं थी। और तुम जानो आजकलके लौंडे शहर जाकर सिनेमा, बायस्कोप, नाच-रंग न जाने क्या-क्या देखकर कितने आवारा हो गए हैं। एक दिन ज़ाफ़रानी लकड़ियाँ चुनने गई थी कि क्या देखती हूँ खाली हाथ वापस चली आ रही है। ज़ार ज़ार रोती हुई। मैंने पूछा कि क्या हुआ तो कुछ जवाब नहीं, बस रोए चली जा रही है। 'अरी कमबख्त, कुछ कहेगी भी क्या हुआ? किसीने मारा, गाली दी, चोट लग गई, आखिर हुआ क्या?' उसका जवाब सुनकर मैं तो दंग रह गई। बेटा, बात ही उसने ऐसी कही जो किसी माँने अपनी बेटीकी ज़बानसे कभी नहीं सुनी होगी। कहने लगी, 'माँ! मेरा ब्याह कर दो।' और फिर लगी रोने। दस दफ़ा पूछा, तब यह बात खुली कि लकड़ियाँ चुन रही थीं कि ज़िलेदार का लड़का जो शहरसे आया हुआ था, उधर आन निकला और लड़कीको अकेला देखकर लगा उसे छेड़ने और औल-फ़ौल बकने। जब ज़ाफ़रानीने झिड़का तो उसका हाथ पकड़कर बद इरादेसे अपनी तरफ़ घसीटने लगा। बड़ी मुसी-बतसे हाथ छुड़ाकर भागती हुई आई थी बेचारी। मगर उस बदमाशकी हौल बैठी हुई थी, दिलमें अभीतक। पत्तेकी तरह थर-थर काँप रही थी और रो रही थी। और जब हिचकियाँ ज़रा रुकतीं तो यही कहती, 'माँ मेरा ब्याह कर दो, नहीं तो एक दिन मेरी इज़्ज़त मिट्टीमें मिल जाएगी!'......

"......अब तुम ही बोलो बेटा, ग़रीब औरत करे तो क्या करे? जब दमड़ी पास न हो तो किस बिरते पर लड़कीका ब्याह रचाए।... फिर भी मैंने इधर-उधर निगाह डाली कि कोई ग़रीब मगर तबीयतका शरीफ़ आदमी मिल जाए जो ज़ाफ़रानीको ब्याह ले, तो यह फ़िक्र तो दूर हो जाए। मगर पचास-साठ रुपए तो तब भी चाहिए। ज़मीन, ज़ेवर, यहाँ तक कि मेरे और ज़ाफ़रानीके कानके बाले तक बिक चुके थे। अब

तो कुछ भी नहीं था जिसके सहारे क़र्ज़ा ही मिल जाता। इसी उधेड़-बुनमें लगी हुई थी कि एक दिन एक आदमी आया। बिल्कुल सूरतसे बेचारा कुली मालूम होता था। वही माथे पर पट्टेका निशान। उमर पता नहीं क्या थी। पर पचासका मालूम होता था। कहने लगा, 'गुलाम नबी ने यह भेजा है, मैं उसका दोस्त हूँ महमदू।' यह कहकर एक मैलेसे कपड़े की पोटली मेरे सामने रख दी। खोलकर देखा तो नोट और रुपये और कुछ रेज़गारी। गिने तो पाँच ऊपर साठ रुपये और दस आने हुए। वह बोला, 'गुलाम नबी ने कहा था कि माँ से कहना, इस रुपये से ज़ाफ़रानी का ब्याह कर दें।' मैंने खुदाका शुक्र किया कि बेटेके दिलमें माँ-बहनका ख्याल तो आया। फिर महमदूके मुँहपर कुछ अजीब-सी हालत देखकर मैंने पूछा, 'और गुलाम नबीका क्या हाल है? वह नहीं आया?' महमदूके गलेमें आवाज़ फँसी हुई मालूम होती थी। फिर ठहरकर बोला, जैसे बोलना न चाहता हो, 'माँ जी, गुलाम नबी तो चल बसा। उसे दिक़ हो गई थी।' और बस चुप हो गया।

"....बेटा तुम लोग, नहीं समझ सकते कि बेटेकी मौतका माँ पर क्या असर होता है।...ऐसा मालूम होता था जैसे कलेजेका टुकड़ा किसीने काटकर निकाल लिया हो। माँ नौ महीने बच्चेको पेटमें रखती है ना। दो साल दूध पिलाती है। बच्चा उसके खून, उसके हाड़-माँससे बनता है। और फिर वह बड़ा होकर गुलाम नबीकी तरह चौड़े चकले सीनेवाला नौजवान हो जाता है। और फिर गधेकी तरह साहब लोगोंका सामान ढोते-ढोते खूनकी खाँसी खाँसता हुआ मर जाता है और उसके साथ माँ भी मर जाती है।....और सबसे बड़ी मौत यह होती है कि वह फिर भी ज़िन्दा रहती है।...

"मेरा तो जो हाल हुआ सो हुआ, ज़ाफ़रानी पर भाईकी मौतका कुछ अजीब ही असर हुआ। छोटे भाई की पढ़ाईकी और भी फ़िक्र पड़ गई। हरवक्त उसकी जानपर सवार रहती कि—पढ़। तख्ती लिख। मदरसेका

काम कर। घड़ी भरके लिए भी छुट्टी न देती। जैसे उसे कोई खास जल्दी हो कि सालभरकी मदरसेकी पढ़ाई दो चार दिनमें पूरी हो जाय। न जाने क्यों इतनी जल्दी थी उसे! न जाने क्यों?....

"हाँ, और महमदूके पास बैठकर ज़ाफ़रानीने भाईके आखिरी दिनोंका सब हाल कुरेद-कुरेदकर पूछा। कब और कैसे बीमार पड़ा, इलाज हुआ या नहीं? क्या सब सामान ढोनेवाले मज़दूरोंको इसी तरह दिक़ हो जाती है? और जब महमदूने कहा, 'हाँ बहुत-सों को' तो न जाने क्यों ज़ाफ़रानीने उससे पूछा, 'तो क्या वापस जाकर तुम फिर यही काम करने लगोगे? यहाँ क्यों नहीं रह जाते?'...न जाने क्यों...

"हमारे कहनेसे महमदू हमारे यहाँ तीन दिन और ठहरा। जिस रोज़ वह जारहा था मैंने उससे पूछा, 'क्यों महमदू जब यह काम इतना खतरनाक है तो छोड़ क्यों नहीं देता?' वह बोला, 'छोड़कर क्या करूँगा, माँ जी? और कोई काम आता नहीं है। और फिर कोई आगे है न पीछे। न माँ, न बाप...' मैंने जल्दीसे पूछा, 'और बीबी?'...उसने ठंडी साँस लेकर कहा, 'कब की मर गई।'...पता नहीं वह मेरा मतलब समझा था नहीं, पर मैंने कहा, 'दूसरी क्यों नहीं कर लेते?'...उसको तीन दिनमें हँसते तो क्या मुस्कराते भी न देखा था। पर इस बातपर उसकी आँखोंमें हल्की-सी चमक हुई और उसके सूखे चमड़े जैसे चेहरेपर हँसीकी झुर्रियाँ पड़ गईं। 'मुझसे कौन ब्याह करे है, माँ जी?'...तो बेटा यों ज़ाफ़रानीका ब्याह महमदूसे तय पाया।

"...क्या कहा? ज़ाफ़रानीकी राय?...बेटा, भला शादी-ब्याह क्या लड़कियोंकी सलाहसे होते हैं। पर मैंने ज़ाफ़रानीसे ज़िक्र किया कि अगले चाँदकी बीसवींको महमदू उसे ब्याहने आएगा। तो यह तो मैं नहीं कहूँगी कि सुनकर वह खुश हो गई। भला शरीफ़ लड़कियाँ क्या शादीके ज़िक्रपर खुश हुआ करती हैं।...पर उसके चेहरेसे इतमीनान ज़रूर टपकता था, जैसे अब उसकी कोई चिन्ता दूर हो गई हो।

"...शादीकी छोटी-मोटी तैयारियोंमें दिन गुज़र गए। हाँ बेटा, आखिर हम ग़रीबोंको भी कुछ न कुछ देना ही पड़ता है; चाहे एक ही जोड़ा और दो चाँदीके बाले हों। जिस दिन महमदू आनेवाला था उसी दिन मैंने सवेरे ही से ज़ाफ़रानीको उठाकर नहला-धुला शादीका जोड़ा पहना दिया। गुलाबी रंगका कुर्ता और उसके नीचे हरे फूलदार छींटकी शलवार, हम पुराने ज़मानेकी काश्मीरी औरतें तो बस लम्बे-लम्बे कुर्ते पहना करती थीं मगर इस शेरे-काश्मीरके कहनेसे आजकलकी लड़कियोंने शलवारें भी पहननी शुरू कर दी हैं। यहाँ तक कि ज़ाफ़रानी तो मुझे भी मजबूर करती थी कि माँ शलवार पहनो, नहीं तो शेरे-काश्मीर खफ़ा हो जाएंगे। शेर-बेरसे डरे मेरी बला, पर और औरतें भी अब शलवार पहनने लगी थीं। सो मैंने सोचा मैं ही क्यों नक्कू बनूँ। सो मैंने भी सिलवा ली।...

"...इतना गुस्सा आया है मुझे इस शेरे-काश्मीरपर कि कमबख्तको अगर पकड़ा जाना था तो क्या उसे वही दिन जुड़ा था जब मेरी बेटीका ब्याह तय कर पाया था। एकाएक सारे गाँवमें शोर मच गया, 'शेरे-काश्मीर पकड़े गए! शेरे-काश्मीर पकड़े गए!!' मुझे क्या पता, क्यों सरकारने उसे पकड़ा था...मेरी तरफ़से अगर सालके बारह महीने उसे क़ैद रखा जाता तो और भी अच्छा था।...पर यह ज़रूर सुना कि अबकी उसने खुद राजा ही को रियासतसे बाहर निकालनेकी बात चलाई थी। मैंने कहा था कि अबकी उस शेरने शेर-बबरकी माँदमें पंजा डाला है, अब वह ज़िन्दा नहीं बचेगा। बाहर शोरकी आवाज़ हुई तो मैं गलीमें आई, यह सोचकर कि शायद महमदू और उसके साथी बरात लाए हों। मगर वहाँ तो बच्चे धींगामुश्ती मचा रहे थे। दो-चार लाल झण्डे, जिनपर हल बना हुआ था, लिए 'शेरे-काश्मीर ज़िन्दाबाद! डोगरा राज मुर्दाबाद!!' कहते फिर रहे थे। और हमारा ग़फ़ूरा छः ईंटोंका चबूतरा बनाए सफ़ेद खड़ियासे दीवारपर कुछ लिख रहा था और ज़ोर-ज़ोरसे हिज्जे पढ़ता जाता था।..."काफ़, शीन, मीम, ये, रे...चे, हे, वाओ, हे,...दाल, वाओ"...और ज़ाफ़रानी दरवाज़े

में खड़ी ग़फ़ूराको देख रही थी और अब उसके चेहरेपर इतनी खुशी थी जैसे उसने कोई बड़ा काम पूरा कर लिया हो।

"......हाँ, तो अभी मैं अंदर जाकर बैठी ही थी कि बाहरसे रोने और चिल्लानेकी आवाज़ आई। मैंने जो देखा तो पाँव-तलेकी ज़मीन निकल गई। एक खाकी रंगकी मोटरलारी खड़ी थी और उसमें से सिपाही कूदकर बच्चोंको लाठियोंसे मार रहे थे। मैं दीवारकी तरफ़ दौड़ी जहाँ पल भर हुए ग़फ़ूरा खड़ा हुआ खड़ियासे लिख रहा था। पर ग़फ़ूरा वहाँ नहीं था। हाँ, खूनकी एक लकीर ज़मीनपर खिन्ची हुई थी और उस लकीरकी सीधमें जो मैंने देखा तो ग़फ़ूराको ज़मीनपर बेहोश पड़ा पाया। उसके सिरमें एक गहरा घाव था जिसमें से खून बह रहा था और उसके हाथमें अभीतक खड़ियाका टुकड़ा था।......मैं अपने ग़फ़ूराको उठाकर अंदर ले आई और वहाँ अपनी बहनकी गोदमें उसने जान दे दी। और बेहोशीमें भी आखिरी वक़्त तक उसके होंट उन्हीं हरफ़ोंको दुहराते रहे जिन्हें वह बाहर दीवारपर लिखनेकी कोशिश कर रहा था—'काफ़, शीन, मीम, ये...,' और अभी 'रे' नहीं कह पाया था कि गड़गड़ाहटके साथ एक हिचकी आई उस महीनेमें दूसरी बार मुझे मौत आई पर न आई।...

"......और उसके बाद क्या हुआ, बेटा, मुझे ऐसा याद है जैसे कोई डरावना ख्वाब हो, जिसमें एक खौफ़नाक बातका दूसरी खौफ़नाक बातसे कोई ताल्लुक़ न हो, मगर फिर भी खौफ़ और दहशतका पहाड़ उठता चला जाए।...

"...ज़ाफ़रानीकी आँखें जो कभी कमलसे मिलती-जुलती हुआ करती थीं, उस वक़्त दो दहकते हुए अंगारोंकी तरह थीं।...आँसुओंका नाम नहीं था। नहीं तो वह आग बुझ जाती जो उन आँखोंमें सुलग रही थी।...

"......और फिर सारे गाँववालोंका एक जलूस। मर्दोंसे आगे औरतें और औरतोंमें सबसे आगे ज़ाफ़रानी। वही अपनी शादीका जोड़ा पहने हुए और उसकी आँखोंमें वही दहकती हुई आग। और यह सारी

भीड़ गाती हुई खेतोंमें से होकर सड़ककी तरफ़ जाती हुई। वहाँ—बिल्कुल उसी जगह, जहाँ तुम्हारी मोटर खड़ी है, सिपाहियोंकी खाकी लारी खड़ी थी।...

"...बड़ी बड़ी मूँछों और काली रंगतवाले सिपाही और उनकी बन्दूकें जो टकटकी बाँधे उस जलूसकी तरफ़, उन औरतोंकी तरफ़, ज़ाफ़रानी-की तरफ़ देख रही थीं।...

"....एक तड़ाखा। दस-बारह तड़ाखे। सब तितर-बितर होकर भागे और उस खेतके बीचोंबीच अपनी छातीको सँभालती हुई ज़ाफ़रानी नर्म मिट्टीमें इस तरह गिरी जैसे माकी गोदमें बच्चा आनकर गिर पड़े। मैं उधर भागी, पर जबतक मैं पहुँचूँ ज़ाफ़रानीकी छातीमेंसे खूनकी एक धार बहती हुई खेतकी सूखी मिट्टीको सींच रही थी।...औरत की छाती और उसमें से दूधके बजाए खून।...खून मिट्टीमें मिल रहा था।... और मेरी बेटी मेरी गोदमें जान दे रही थी। पर मरते दमतक उसके होटोंपर मुस्कराहट थी। और न जाने क्यों आखिरी हिचकीसे पहले उसने मुस्कराकर मुझसे कहा, मेरा ब्याह हो गया माँ।'...यहीं इसी खेतमें जहाँ तुम गुलेलालाकी तरह सुर्ख ज़ाफ़रानके फूल देखते हो।...

"......सुनी बेटा, तुमने मेरी कहानी?...पर तुम कहाँ हो? ...चले गए ना तुम?...मैं कहती थी कि अभी तुम्हारी मोटर ठीक हो जाएगी और तुम लोग चले जाओगे और कहानी न सुन पाओगे। ...मोटरें तो इस सड़कपर से गुज़रती ही रहती हैं, बेटा। पल दो-पल को ठहरती भी हैं तो फिर धूलके बादल उड़ाती चली जाती हैं। पर यह ज़ाफ़रानकी खेती यों ही खड़ी रहेगी, यहाँतक कि फूल चुननेका वक्त आ जाएगा और यह लाल-लाल लहूकी बूँदों जैसे गुच्छे सुखाकर दिसावरको भेज दिए जाएँगे और इनकी खुशबू न जाने कहाँ-कहाँ और किस किसके दस्तरख्वानोंसे महकेगी। और तुम्हारी तरह कितने ही आदमी सवाल करेंगे कि इस ज़ाफ़रानका रंग लहूकी तरह लाल क्यों है?...पर कोई न बता पाएगा; क्योंकि इसकी वजह तो सिर्फ मैं ही जानती ।..."



चढ़ाव-उतार

चढ़ाव

चढ़ाई कितनी मनोहर थी !

ज्यों-ज्यों सड़क ऊँचाईकी तरफ़ जा रही थी, ऐसा मालूम होता था कि दुनियाकी तमाम गंदगी, गर्द-गुबार, दुखःदर्द दूर—बहुत दूर रह गए हैं। हवामें हल्की-हल्की ठंड थी और एक अजीब खुशबू। चीड़के पेड़, फूल, घास और गीली मिट्टी की मिली-जुली खुशबू। हरी-भरी पहाड़ियाँ फूलों से लदी थीं और वायुमंडलमें एक अनोखी सुरभि और मादकता थी, जैसे बिना पिए नशा चढ़ता चला जा रहा हो। लेकिन ऐसा नशा जिसकी मादकता भी चेतनाको जाग्रत कर दे। जिसमें दिमाग़ सोनेके बजाय जाग उठे और हृदय-तंत्रीके तार जीवनके सम्पर्कसे झंकृत हो उठें।

लारी खाँसती, खखारती, शोर मचाती, एक बेसुरा गीत गाती चढ़ती चली जा रही थी। गियर बदलनेकी गड़गड़ाहटके साथ मोड़ पर पहाड़ीसे आँचल बचाती ऊपर चढ़ी तो उत्तरी पंजाबका पूरा चित्र निर्मलकी आखों के सामने फैला जाता था। उसने विजय-गर्वसे मैदान पर नज़र डाली। रावलपिंडीका शहर ऐसा मालूम हुआ जैसे गुड़ियोंके घरोंकी बस्ती हो। वह था रेलवे-स्टेशन, जहाँ वह दो घंटे पहले प्रातःकाल लाहौर एक्सप्रेससे उतरा था। और वह थी बच्चोंके खिलौनेवाली रेलकी पटरी, जो लाहौरकी ओर जाकर क्षितिजमें खो गई थी।

लाहौर! माल रोड, सर्कुलर रोड, भाटी दरवाज़ा, तांगे, ताँगेवाले, "भाटी दरवाज़े, इक-इक आने" लारेन्स गार्डन, सफ़ेद शलवारें, रंगीन दुपट्टे, "मेरा हिस्सा दूरका जलवा" . . .

लाहौर! रेलवे-क्लियरिंग-आफ़िस, मक्खियोंका एक छत्ता, भिन-भिन-भिन। हर क्लर्क एक मक्खी था—वह खुद। निर्मलकुमार, जो स्वभावतः कवि और सौन्दर्यका उपासक था, एक क्लर्क था। एक मक्खी था। टन्-टन् सुबहके दस बजे और सैकड़ों मक्खियाँ भिन-भिन करतीं छत्तेमें घुस जातीं और फिर शामको छः बजे बाहर निकलतीं। नहीं, एक क्लर्क मक्खी से भी बदतर था। मक्खीके छत्तेपर कोई हमला करे तो मक्खी उसको काट सकती है। मगर क्लर्कको अगर हेडक्लर्क गाली दे तो वह उसको काट नहीं सकता। मक्खी और मक्खी बराबर होती है। मगर क्लर्कके ऊपर हेड-क्लर्क, हेड-क्लर्कके ऊपर सुप्रिंटेन्डेन्ट, सुप्रिंटेन्डेन्टके ऊपर ट्रैफ़िक मैनेजर, उसके ऊपर जनरल मैनेजर। उन सबके ऊपर रेलवे-बोर्ड, रेलवे-मेम्बर। एक ईंट पर दूसरी ईंट। इंसानोंका कुतुब मीनार और सातों मंज़िलका बोझ क्लर्कके काँधों पर। विचार करते ही निर्मलके काँधोंमें दर्द-सा होने लगा।

लाहौर! हर पहिली तारीखको साठ रुपए। वह हर बार सोचता, आशा करता और प्रार्थना करता कि एकाउन्टेन्टकी ग़लतीसे उसके लिफ़ाफ़ेमें पाँच-दस रुपए अधिक निकल आएँ। मगर वही साठ रुपए। कभी पाँच-पाँच रुपएके बारह नोट, कभी दस-दस रुपएके छः नोट। और फिर दो तारीखको उनमेंसे दस रुपए घरके किरायेमें निकल जाते और पचीस रुपए वह घर चलानेके लिए अपनी पत्नीको दे देता।

उसकी पत्नी, उसे कितनी नफ़रत थी उससे! गोबिन्दी, गोबिन्दी! कितना नीरस नाम था। इतनी ही नीरस वह स्वयं थी। उसकी एक झलक ही सुखद स्वप्नोंका अंत कर देनेके लिए पर्याप्त थी। पीला-पीला मुखड़ा, छोटी-छोटी आँखें, सीधे तेलसे चुपड़े हुए बाल, न कपड़े पहननेका

ढंग, न बात करनेका ढब, मैली शलवार, ढीली-ढाली क़मीज़, मलगुजी ओढ़नी—जो मिल गया पहन लिया। रसिकता तो उसको छू भी न गई थी। दिन-भर चूल्हे या हाँडीमें लगी रहती। दफ़्तरसे आकर निर्मल आवाज़ देता, "गोबिन्दी", तो ऐसी दशामें आकर खड़ी होती कि हाथ आटेमें सने हुए, मुँहपर राख मली हुई, गालों पर चूल्हेकी कालिख और एक घृणित तुच्छताके साथ "जी" कहकर उसके जूतेकी डोरी खोलने लगती। निर्मलकी तमाम रसमय कल्पनाएँ और कवितामय विचार एक क्षणमें चकनाचूर हो जाते। वह कहता, "क्यों गोबिन्दी, सिनेमा चलना है?" जवाब मिलता "जी मैं क्या करूँगी, आप चले जाइए। मुझे तो अभी रोटी पकानी है।" रोटी पकानी है! मानो मनुष्य केवल रोटी खाने-पकानेके लिए ही जीवित रहता है। सिनेमा, नाच, गाना, सैर-तफ़रीह किसी चीज़का भी तो शौक़ नहीं कमबख्तको! कभी निर्मलके मजबूर करने पर उसके साथ बाहर चली भी जाती तो उल्टे-सीधे सवालोंसे नाकमें दम कर देती। "क्यों जी, यह मोटर कितनेकी होगी?" "क्यों जी, यह बिजलीके हंडोंमें तेल कौन डालता है?" "क्यों जी, यह इन्द्रबाला और काननबाला दोनों बहनें हैं क्या?" "क्यों जी! क्यों जी! क्यों जी! उसका जी जल जाता है और वह निश्चय कर लेता कि अब कभी उसे अपने साथ सैरको न ले जाएगा।

न जाने किस तरह उसने गोबिन्दीके साथ यह तीन वर्ष गुज़ारे थे। जहाँ उसके माँ-बापने उसके साथ और बहुत-सी "कृपाएँ" की थीं, वहाँ गोबिन्दी जैसी पत्नी उसके पल्ले बाँध दी थी। उसकी जिन्दगी तबाह करनेके लिए उन्होंने क्या कुछ यत्न नहीं किए थे। सबसे पहले तो उसे माधोसिंह जैसा नाम दिया था। माधोसिंह! क्या भोंडा गँवारू नाम था। भला इस नामका कोई कवि, लेखक या कलाकार हुआ है? "प्रेमकी ज्योति" लेखक श्री माधोसिंहजी! "यौवन-गीत" लेखक श्री माधोसिंह 'माधो'। "क्रान्ति-ज्वाला" लेखक 'माधोसिंह'! माधो! बीस वर्षतक इस नामने उसके

जीवनको कटु बनाए रखा था। इस नामको लेकर भला वह किस मुँहसे साहित्यके संसारमें प्रवेश कर सकता था ? इसलिए लाहौर आकर पहला काम उसने यह किया था कि इस "माधोसिंह" नामको रावीके जलमें डुबो दिया था। अब वह निर्मलकुमार था। नाम ही से कविता और रसिकता टपकती थी। "आपका शुभ नाम ?" "दास को निर्मलकुमार कहते हैं।" "ओह, वही निर्मलकुमार जिनकी कहानी 'साहित्य' के वर्षांकमें छपी है। बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर।" कितना अंतर था निर्मलकुमार और माधोसिंहमें ! मगर वह अपने गाँव जलालपुर जट्टाँ जाता तो उसके माँ-बाप अब भी उसको 'माधो, माधो' कहकर पुकारते। इसीलिए उसे वहाँ जाना भाता न था। साल-भरमें एक-आध बार जाता और दो-चार ही दिनमें कोई बहाना करके वापस आ जाता।

लारी हाँपती काँपती एक और मोड़पर चढ़ी तो फिर मैदान नज़र आया। मगर अब वह इतने ऊँचे चढ़ आए थे कि न रावलपिंडी दिखाई देता था न रेलवे-लाइन। रावलपिंडी, लाहौर, रेलवे-क्लियरिंग-आफ़िस, गोबिन्दी, जलालपुर जट्टाँ, 'माधो, माधो' पुकारनेवाले माँ-बाप, यह सब अब बहुत दूर, बहुत नीचे रह गए थे। और वह एक स्वच्छंद पक्षीकी तरह आकाश में ऊँचा उड़ता चला जा रहा था। ऊँचा, बहुत ऊँचा।

निर्मलकुमारने दो सौ रुपएमें अपनी कहानियोंका संग्रह प्रकाशकको दिया था। सौ रुपए रेडिओके प्रोग्रामसे कमाए थे। इन तीन सौ रुपयोंके सहारे वह गोबिन्दीको जलालपुर जट्टाँ भेजकर, रेलवे-क्लियरिंग आफ़िससे एक महीनेकी छुट्टी लेकर अब काश्मीर जा रहा था। स्वर्ग-समान काश्मीर ! वह एक महीनेके लिए यह भूल जाना चाहता था कि उसका जन्म जलालपुर जट्टाँ जैसी नीरस जगहपर हुआ है, उसका पिता अनपढ़ ज़मींदार है, उसकी पत्नी छोटी-छोटी आँखोंवाली गोबिन्दी है, और वह रेलवे क्लियरिंग-आफ़िसका एक क्लर्क है जो प्रतिदिन हेड-क्लर्ककी झिड़कियाँ और सुप्रिंटेन्डेन्टकी गालियाँ खानेपर विवश है। लाहौरसे रावलपिण्डी तक

वह सेकेन्ड-क्लासमें आया था। रावलपिंडीसे उसने "सुपर बस" में अगली सीट ली थी ताकि इस यात्राका पूरा आनन्द उठा सके। बीते हुए दिनोंकी कटुताएँ पीछे छूट गईं थीं। वह रसमय, सुखद और जीवनप्रद भविष्यकी ओर जा रहा था। वह नीचाईसे ऊँचाईकी ओर जा रहा था।

बराबरकी सीटपर एक लड़की बैठी हुई थी। लड़की! उसको केवल लड़की कहना उसके साथ सर्वथा अन्याय था। लड़की तो गोबिन्दी भी थी। ज़मीन-आसमानका अन्तर था। स्वर्ग और नरकका अन्तर। उस लड़कीका सामीप्य कितना रोचक था। उसके रेशमी कपड़ोंसे एक अनोखी सुगन्ध आ रही थी। वह तेज़ इत्र नहीं था, जिसकी खुशबूका तमाचा लगता है। यह विलायती सेन्टकी धीमी-धीमी दबी-दबी खुशबू थी, जो धीरे-धीरे नाकसे होती हुई दिलमें उतर जाती है। सेन्टके साथ एक और खुशबू भी मिली हुई थी। वह खुशबू जो एक युवा, स्वस्थ स्त्रीके शरीरसे, उसके बालोंसे उसके रोंए-रोंएसे निकलती है। यूँ तो निर्मल खिड़कीके बाहर पहाड़ीका दृश्य देख रहा था, परन्तु उसका हृदय और विचार निरन्तर बराबरवाली सीटपर केन्द्रित थे। काश, उस लड़कीसे किसी प्रकार उसका परिचय हो जाय!

मुड़कर देखना असभ्यता थी। परन्तु एक बार निर्मलने सामने देखा तो ड्राइवरके सामनेवाले आइनेमें उसे अपनी ×हमसफ़रका चेहरा दिखाई दिया। गोरी-गोरी गुलाबी रंगत, मुँहपर हल्का-सा पावडर और सुर्खी लगी हुई। सुडौल नाक, मदभरी आँखे जो कभी तारोंकी तरह चमकने लगतीं थीं, कभी लम्बी-लम्बी पलकोंके परदेमें छिप जाती थीं। कमानदार भवें, ऊँचा ललाट, सिरपर एक फूलोंवाला रूमाल बँधा हुआ था, फिर भी बालोंकी कुछ चंचल लटें चेहरेपर बल खा रही थीं। मगर जिस चीज़ने निर्मलको मोहित कर लिया था, वह थे उसके होंठ, जो लिपस्टिककी लालीसे गुलनार थे। कितनी मिठास थी उन होठोंमें, कितना रस, कितना आकर्षण! निर्मलके कवि-हृदयने उनके लिए कितनी उपमाएँ सोचीं, मगर उसे किसीसे भी संतोष न

× एक साथ सफ़र करनेवाली

हुआ वह दबी हुई आवाज़में गुनगुनाने लगाः—

आह वह दोशीज़ा लब, गुलरेज़ लब, गुलनार लब,
आह वह लब, आशना लब, शोख लब, खूँखार लब ।

हवाके एक झोंकेसे जार्जेटकी साड़ीका आँचल उड़कर निर्मलके चेहरेपर नक़ाब बनकर छा गया। कितनी मादकता थी उस पल्लूके छू जानेमें ! कितनी नशीली-सी सुगंध थी उसमें, हल्की-हल्की दबी-दबी ! निर्मलका जी चाहा कि बस यह आँचल इसी तरह उसके चेहरेपर पड़ा रहे । मगर चूड़ियोंकी हल्की-सी खनखनाहटके साथ एक गोरी कलाईमें गति पैदा हुई और पल्लू खींच लिया गया ।

लारी मरीके पास पहुँच गई थी । "सनी बैंक" का मोड़ आया तो दूसरी तरफ़से एक मोटर बग़ैर हार्न दिए आ गई । ड्राइवरने होशियारीसे स्टीयरिंग व्हील बाँए तरफ़ मोड़कर बचा लिया । लेकिन एकाएक उस झटके से लारीके सब मुसाफ़िर और सामान एक-दूसरेपर गिरने-पड़ने लगे । निर्मल स्वयं बाईं ओरकी खिड़कीसे टकराया, लोहेका फ्रेम उसके हाथमें चुभ गया, परन्तु उसी समय उसके दाएँ पहलूपर एक कोमल, रेशमी, गुदगुदा-सा बोझ आपड़ा । निर्मलके शरीरमें एक झुरझुरी-सी आ गई । एक क्षणमें लारी फिर सीधी होगई और सब मुसाफ़िर सँभलकर बैठ गए ।

"Sorry" लड़कीने सँभलते हुए कहा ।

"कोई बात नहीं," निर्मलने अवसरका लाभ उठाते हुए बातचीतका सिलसिला छेड़ा, "वह मोटरवाला बड़ा ही नालायक़ था ।"

लड़की खामोश रही । अब क्या बातकी जाए ? कुछ सोचकर निर्मलने कहा, "अगर आप इस खिड़कीमें से बाहरकी सैर करना चाहें तो आप इधर आ जाइए । मैं आपकी जगह ले लूँगा ।"

"थैन्क यू—"

चलती गाड़ीमें इतनी तंग जगहमें सीट बदली जाए तो दो शरीरोंका टकराना, बल्कि रगड़ खाना स्वाभाविक है । लारीका सफ़र निर्मलके लिए

एक रसमय, न भूलनेवाली "घटना" बनता जा रहा था।

"क्या आप काश्मीर जारही हैं?"

"जी हाँ।"

"अकेली ही?"

"जी हाँ। और आप?"

"मैं भी काश्मीर जारहा हूँ। कितने दिन रहनेका विचार है आपका?"

"कोई एक महीना।"

"अजीब इत्तिफ़ाक़ है। मैं भी एक महीनेके लिए जारहा हूँ।"

बातचीतका सिलसिला शुरू हो गया तो एक बातमें से दूसरी बात निकलती चली गई। लड़कीका नाम शीरीं था। शीरीं! कितना मीठा नाम! कितना प्यारा नाम! वह बम्बईकी पारसिन थी। कालेजमें पढ़ती थी। वह एक स्वच्छंद वातावरणमें पली थी। इसलिए उसमें उत्तरी हिन्दुस्तानकी लड़कियोंकी-सी अनावश्यक शर्म और झिझक नहीं थी। वह मर्दोंसे उनकी ही सतहपर बात कर सकती थी। साहित्य, राजनीति, कला, फ़िल्म,—निर्मलने जिस विषयपर बात छेड़ी, शीरीं सबसे भली-भाँति परिचित थी। यह था नमूना उस नई दुनियाकी नई औरतका जो निर्मलका 'आइडियल' थी। और एक गोबिन्दी थी कि वह रोटी पकानेके सिवाय किसी भी विषय-पर बात नहीं कर सकती थी। कितना अन्तर था! ज़मीन और आसमानका अन्तर, स्वर्ग और नरकका अन्तर!

लारी हाँपती-काँपती चढ़ाईपर चली जारही थी। एकाएक इंजनमें घड़घड़ाहट हुई और गाड़ी झुरझुरी लेकर ठहर गई। ड्राइवरने उतरकर इंजन खोला और मुसाफ़िरोंसे कहा, "आप कुछ उतरकर सुस्ता लें। इंजन ठीक होनेमें देर लगेगी।" कई घंटोंसे बैठे बैठे बदन अकड़ गए थे। अवसर का लाभ उठाकर सब मुसाफ़िर उतर पड़े। पंजाबी सौदागर, दिल्लीके एक रईस पानोंका डिब्बा और बटुआ सँभाले हुए, दोनों जवान जो कालेजके विद्यार्थी मालूम होते थे और शीरींकी तरफ़ घूर-घूरकर देख रहे थे (न जाने

क्यों निर्मलको उनकी यह हरकत बहुत अनुचित मालूम हुई), तीन ग़रीब काश्मीरी जिन्होंने मैले धुस्से ओढ़ रखे थे, एक बुर्क़ापोश औरत और उसका शौहर। मगर उस समय निर्मलको सिर्फ़ एक मुसाफ़िरमें दिलचस्पी थी।

इंजनको ठीक करनेमें पूरे ढाई घंटे लग गए। मगर निर्मल और शीरीं दोनोंको ड्राइवरकी सुस्तीसे कोई शिकायत न हुई। इस बीचमें वह दोनों टहलते हुए दूर सड़कपर निकल गए। पहाड़ी पर पगडंडीके रास्ते चढ़े। शीरीं ऊँची एड़ीका जूता पहने हुए थी। जब वह कंकड़ियोंपर फिसलने लगी तो निर्मलको उसका हाथ पकड़कर सहारा देना पड़ा। कितना नरम और नाज़ुक हाथ था उसका! पतली-पतली गोरी-गोरी उँगलियाँ जिनके नाखून 'क्युटेक्स' की बदौलत याक़ूतकी तरह लाल हो रहे थे। जब वह थक गए तो पहाड़ीकी ढालपर घासपर पाँव फैलाकर बैठ गए। पहाड़ी फूल इधर-उधर खिले हुए थे। निमलने छोटे छोटे फूलोंका एक गुच्छा शीरींको दिया जो उसने अपने बालोंमें लगा लिया। भूख लगी तो पहाड़ी बच्चोंसे सेब और नाशपातियाँ खरीदकर खाईं। फिर क़रीबके एक चश्मेपर जाकर पानी पिया, मुँह धोया। कितना ठंडा और मीठा पानी था। और शीरींके काले घुंघराले बालोंपर पानीकी बूँदें कितनी अच्छी मालूम हो रही थीं। मुँह धोकर शीरींने अपना चेहरा और हाथ निर्मलके सफ़ेद रूमालसे सुखाए और फिर अपने बैगमें से पाउडर, पफ़ और लिपस्टिक निकालकर अपने सौंदर्यको बढ़ानेमें व्यस्त हो गई।

"शुक्रिया! लीजिए अपना रूमाल। आइए अब वापस चलें।"

जेबमें रूमाल रखनेसे पहले निर्मलने शीरींकी आँख बचाकर उसको सूँघा तो सेन्ट और शीरींकी मिली-जुली खुशबूसे सुगंधित पाया। तीन आनेका सफ़ेद चीथड़ा कुछ लमहोंमें एक बहुमूल्य यादगार बन गया था।

सूर्य अस्त होरहा था। हवामें शीतलता पैदा होचली थी। लारी चलनेसे पहले शीरींने अपना कोट पहन लिया। बहुमूल्य मुलायम कपड़ा, नए ढंगकी काट, कॉलरपर बहुत क़ीमती फ़र लगा हुआ। निर्मलने भी अपना

ओवर-कोट बाहर रख छोड़ा था। मगर शीरींके सामने पुराने, रफ़ू किए हुए, लबादे जैसे कोटको पहनते हुए शर्म मालूम हुई।

"आप भी अपना कोट पहन लीजिए ना, मिस्टर निर्मल !" शीरींने कहा, "सरदी बढ़ती जा रही है।"

अब तो कोई चारा ही न था। लारी चल पड़ी। सूरज बादलोंमें छिप गया था। हवा बर्फ़ीली होगई। शीरींने अपने कोटके फ़रदार कॉलर को उलट लिया। निर्मलने जेबोंमें हाथ डाल लिए। दाईं जेबमें हाथ डाला तो कपड़ेकी एक छोटी-सी थैली मिली। और उस थलीको हाथ लगाते ही उसको गोबिन्दीकी मूर्खता याद आई।

"इस थैलीमें मैंने सुपारी, इलायची, सौंफ़ और लौंग रख दी हैं। सुना है मोटर जब पहाड़ीपर चढ़ती है तो चक्कर आने लगते हैं। मचली भी होती है..."

"नहीं-नहीं, मुझे यह वाहियात चीज़ें नहीं चाहिए। मुझे क्या दूध-पीता बच्चा समझा है ?"

"फिर भी ले जाइए ना। आपको नहीं तो शायद किसी और ही के काम आ जाए।"

"मैंने कह दिया मुझे नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, नहीं चाहिए।" जब गोबिन्दी इस मूर्खतापूर्ण कर्त्तव्यपरायणताका प्रदर्शन करती थी तो निर्मल-को भी ज़िद हो जाती थी।

उसने थैलीको उठाकर दूर फेंक दिया था। मगर मालूम होता था कि गोबिन्दीने आँख बचाकर उसे फिर कोटकी जेबमें डाल दिया था। 'कितनी मूरख, फूहड़ औरतसे पाला पड़ा है।' निर्मलने सोचा और उसका जी चाहा कि उस थैलीको, जो गोबिन्दीकी ही तरह गँवारू और दक़ियानूसी थी, उठाकर खिड़कीसे बाहर फेंक दे। मगर वह बीचमें बैठा था। एक तरफ़ ड्राइवर दूसरी तरफ़ शीरीं। उन्होंने देख लिया तो बेकार सवालोंके जवाब देने पड़ेंगे। फिर भी उसने जेबसे हाथ निकाल लिया। थैलीको

छूकर उसे गोबिन्दीका ख्याल आता था। और गोबिन्दीका ख्याल आते ही गुस्सा।

लारी फिर मुस्तैदीसे चढ़ाईपर चढ़ रही थी। सामने पहाड़ियोंकी चोटियोंपर बादल तैर रहे थे। वायुमंडलमें एक अनोखा आकर्षण, एक अनोखी शांति थी। लारीकी घरघराहट भी स्वर्गका संगीत मालूम होती थी। दूर नीचे घाटीमें नदीका पानी नीलवर्ण था और पहाड़ीकी हरी-भरी ढालपर भेड़ें चर रही थीं। कहीं दूर कोई चरवाहा बाँसुरी बजा रहा था। एक दर्द-भरा राग, मगर यह मीठा-मीठा राग था। मीठा-मीठा राग, दुःख भरा और शांत। और कुछ ऐसा ही राग उन पहाड़ी स्रोतोंमें भी था जिनके पाससे होकर लारी गुज़र रही थी और जिनकी फुहार उड़कर शीरींके बालोंमें मोती पिरो रही थी।

ब्रेकके झटकेके साथ लारी ठहर गई। यह दोमेलका डाक-बंगला था। ड्राइवरने कहा, "आजकी रात यहीं रहना होगा।"

निर्मल और शीरीं नीचे उतरकर डाक-बंगलेमें चले गए। खानसामासे कहकर अपना सामान लारीसे उतरवाया और चायका आर्डर दिया। डाक-बंगला खाली था इसलिए उन दोनोंको एक-एक कमरा आसानीसे मिल गया। गरम पानीसे मुँह-हाथ धोकर निर्मल बाहर निकला तो देखा कि शीरींने इसी बीचमें कपड़े भी बदल लिए हैं। और ब्लाउज़के बजाय अब वह रेशमी शलवार और क़मीज़ पहने हुए थी। और क़मीज़पर एक उन्नाबी रंगका कसा हुआ स्वेटर जिससे उसके सीनेका उभार साफ़ दिखाई देता था। कंधोंपर रेशमी दुपट्टा उसने अल्हड़पनसे डाल रखा था।

चायकी मेज़पर बैठते हुए निर्मलने कहा, "तो आप शलवार-क़मीज़ भी पहनती हैं?"

"जी हाँ, मुझे पंजाबी पहनावा बहुत पसंद है।"

"और पंजाबी?" निर्मलने साहस करके पूछ ही लिया। शीरींने चाय उँडेलते हुए एक सुरीले क़हक़हेके साथ जवाब दिया "यह आप पर

निर्भर है—आप पहले पंजाबी हैं, जिनसे मेरी मुलाक़ात हुई है।"

दोमेलका डाक बंगला एक अत्यंत रम्य स्थानपर स्थित था। नीचे एक नदी बहती थी जिसके दूसरी तरफ़ एक ऊँची पहाड़ी दीवारकी तरह खड़ी थी। सूर्य अस्त होनेमें अभी थोड़ी देर थी। चाय पीकर निर्मल और शीरीं नदीके किनारे टहलने चले गए। नदीसे थोड़ी दूरपर एक रस्सीका पुल बना हुआ दिखाई दिया—झूलेकी तरह मोटे-मोटे तारोंमें लटका हुआ।

शीरींने कहा, "आइए उस पुलपरसे दूसरी तरफ़ चलें।"

निर्मलने कहा, "मगर आपको डर तो न लगेगा?"

शीरींने कहा, "आपने मुझे क्या समझा है?"

फिर भी जब पुलपर पहला क़दम रखा और झूलेकी तरह सारा पुल थरथरा उठा तो उसके मुँहसे एक हल्की-सी चीख निकल गई। निर्मलने फ़ौरन उसका हाथ पकड़कर उसे सहारा दिया और फिर वह दोनों एक-दूसरेके हाथमें हाथ डाले हँसते-हँसते डगमगाते हुए पुलके बीचमें पहुँच गए।

पचास फ़ुट नीचे नदी पथरीली ढालू ज़मीनपर बड़ी तेज़ीसे बह रही थी। चट्टानोंसे टकराकर पानीमें झाग उठ रहा था।

"कितना सुंदर दृश्य है!" निर्मलने कहा, मगर शीरींसे कोई जवाब न पाया। वह एक हाथसे लोहेके मोटे तारको मज़बूतीसे पकड़े हुए थी और दूसरा हाथ सहारेके लिए निर्मलके कंधेपर रखे, नज़र झुकाए नदीको देख रही थी।

कुछ मिनट तक वह इसी तरह खड़ी रही। निर्मलने नरमीसे पूछा, "क्या सोच रही हैं आप?"

शीरींने कोई जवाब न दिया। वह सोच रही थी, यह पंजाबी नौजवान कितना अच्छा है! कितना सभ्य, कितना मिष्टभाषी! इसकी बातें कितनी दिलचस्प हैं! इसके विचार कितने उच्च हैं! ग़रीब ज़रूर है, मगर इसका दिल अमीर है! वास्तविक धन तो दिल और दिमाग़का ही होता

है। और मेरे माँ-बापको देखो कि मुझे उस शुष्क-हृदय खूसट कर्सेटजीके पल्ले बाँध देना चाहते हैं। कहाँ कर्सेटजी और कहाँ निर्मल ! वह अपनी धनिकताके प्रदर्शनके अतिरिक्त कुछ जानता ही नहीं। जब देखो रोब डालनेकी कोशिश करता हैं। 'मैंने नई कार ली है, पैकार्ड—बिल्कुल नया मॉडल।' 'कल रेसमें दस हज़ार हार गया, मगर कुछ परवाह नहीं।' ला फ़ान्ज़ गया था। दस नए सूट आर्डर किए हैं।' और निर्मलको देखो ! उसके पुराने ओवरकोटमें कई जगह रफ़ू किया हुआ है, कपड़े बिल्कुल मामूली हैं, मगर कितना भला मालूम होता है ! उसके बाल कितने अच्छे हैं ! मालूम होता है, न कभी तेल डालता है, न कंघी करता है, मगर इन लेखकों और आर्टिस्टोंकी तो यही शान होती है। इस लापरवाहीमें भी कितना आकर्षण है ! और वह कर्सेटजी ! बिल्कुल गंजा होनेपर भी रहे-सहे बालोंको तेलसे चुपड़े रहता है। कर्सेटजीके गंजका ख्याल आते ही वह मुस्करा दी।

"क्यों, आप क्या सोचकर मुस्करा रही हैं ?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही। न जाने क्यों इतनी खुश हूँ।"

और वह सोच रही थी, अच्छा ही हुआ मैं माँ-बापसे लड़कर यहाँ भाग आई, नहीं तो वह ज़बरदस्ती किसी न किसी तरह मेरी शादी कर्सेटजीसे कर ही देते और मेरे आशामय स्वप्नोंपर पानी फिर जाता। मगर इस समय मैं उस खूसट कर्सेटजीका ध्यान करके क्यों अपना समय नष्ट कर रही हूँ।

उसने नज़र उठाई तो निर्मलको मुस्कराते हुए पाया। "अब आप बताइए, आप क्यों मुस्करा रहे हैं ?"

निर्मलने कहा, "आपका चेहरा भी सिनेमाके परदेकी तरह है, जिसपर प्रतिक्षण सीन बदलता रहता है। अभी-अभी आप मुस्करा रही थीं, फिर किसी सोचमें डूब गईं और आपके माथेपर बल पड़ गए।"

शीरींने निर्मलके कंधेको धीरेसे दबाते हुए कहा, "चलिए वापस चलें। देर हो रही है।"

सूरज सामनेवाली पहाड़ीकी आड़में छिप गया था। हरी-भरी पहा-

ड़ियोंपर कालिमा छागई थी। संध्याकालकी निस्तब्धतामें नदीका शोर और भी अधिक मालूम होता था। पुलपरसे उतरकर वह पगडंडीके रास्ते डाक-बंगलेकी तरफ़ चले। डाक-बंगला दूर तो न था मगर वे रास्ता भूल गए और किसी और बंगलेके पास जा निकले। वहाँसे ठीक रास्ता मालूम करके चले तो अँधेरा छा चुका था। तीजके चाँद और सितारोंकी मद्धम रोशनी फैली हुई थी। शीरीं अब भी निर्मलके कंधेका सहारा लिए हुए थी। कितना अच्छा लगता था इस तरह चलना। अनजाने ही निर्मलका दायाँ हाथ शीरींकी कमरके चारों ओर लिपट गया और उसका जी चाहा कि रात-भर वे रास्ता भूलकर यों ही चलते रहें। एक अनोखी मादकता, एक अनोखी शांति थी इस सामीप्यमें! एक अजीब-सी बेचैन कर देनेवाली लज्ज़त!

डाक बंगलेके पास आकर वह आपसे आप अलग हो गए। मगर इस अलग होनेमें भी फिर मिलनेका वादा था।

खाना खाकर वह कुछ देर बरामदेमें बैठे बातें करते रहे। शीरीं निर्मलके साहित्यिक कामके बारेमें सवाल करती रही और निर्मल, जो गोबि-न्दीसे कभी इस प्रकारकी बातें न कर सका था, आज न जाने किस प्रवाहमें बहता चला गया। जो कुछ वह लिख चुका था, जो वह लिखना चाहता था, सब बयान कर डाला। कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ—उसके मनमें कितनी योजनाएँ थीं, कितनी इच्छाएँ, आशाएँ और उमंगें। मगर आजतक उसने उनको अपने मन ही में दबा रखा था। उसके मित्र और दफ़्तरके क्लर्क उसकी बातोंपर हँसते थे और गोबिन्दीमें उन बातोंकी समझने की योग्यता ही न थी। मगर शीरीं न केवल ध्यानसे उसकी बातोंको सुनती ही रही; प्रशंसाके शब्दों और उपयुक्त सलाहोंसे उसका हौसला भी बढ़ाती रही। वह सोच रही थी, "निर्मल साहित्यके भंडारका अनमोल रत्न है। मैं अपनी सहायतासे उसको ख्यातिकी सीमा तक पहुँचा सकती हूँ।" और निर्मल सोच रहा था, 'ऐसी रूपवती, बुद्धिमान और सहायक लड़की

जीवन-संगिनी हो तो मनुष्य क्या नहीं कर सकता।'

दस बजे शीरीं "गुड-नाइट" कहकर अपने कमरेमें चली गई। मगर निर्मल देरतक आराम-कुरसीपर लेटा सुखद सपनोंमें लीन रहा। सरदी चमक उठी थी। बारह बजेके लगभग वह उठा और अपने कमरेमें चला गया। सोनेसे पहले वह सोच रहा था, 'जिस संसारमें शीरीं जैसी विभूतियाँ हैं, वह संसार कितना सुन्दर है!"

अगले दिन प्रातःकाल जब वह लारीमें सवार हुए तो दोनोंको ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह बरसों पुराने मित्र हैं। निर्मल ही ने शीरींका असबाब रखवाया, उसका शाल, बटुआ, दस्ताने, मफ़लर उसको लाकर दिए और उससे मफ़लर लपेट लेनेको कहा, क्योंकि हवा बहुत ठंडी थी। शीरींने निर्मलसे कहा कि वह भी अपने ओवर-कोटका कालर चढ़ा ले और सिरपर हैट रख ले। उन दोनोंको एक-दूसरेमें इतनी दिलचस्पी लेते देखकर दूसरे मुसाफ़िर और ड्राइवर उनकी तरफ़ अर्थ-पूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे। मगर निर्मलको आज उनके देखनेकी कोई परवाह नहीं थी।

लारी चल दी।

सड़क और भी चक्करदार होती गई। एकके बाद दूसरा मीलका निशान आता गया। अब वे ऊँची पहाड़ियोंपर चढ़ते-उतरते चले जारहे थे। सड़क नागिनकी तरह बल खाती चली जा रही थी। चक्कर, लारीकी घूँ-घूँ। एक चक्करके बाद दूसरा चक्कर, तीसरा चक्कर और फिर शीरींकी नाज़ुक-मिज़ाजी। एक बार निर्मलने उसकी तरफ़ देखा, शीरींका चेहरा पीला पड़ रहा था।

"क्यों, क्या बात है?"

"कुछ नहीं, यह कमबख़्त चक्कर कब खत्म होंगे!" और एकाएक कानमें किसी जानी-बूझी आवाज़ने कहा, "इस थैलीमें मैंने सुपारी, इलायची, सौंफ़, लौंग रख दिए हैं। सुना है पहाड़पर जब मोटर चढ़ती है तो चक्कर आने लगते हैं। मचली भी होती है......आपके नहीं तो शायद और ही

किसीके काम आजाए।" जल्दीसे उसने कोटकी जेबमें हाथ डाला और अन्दर ही अन्दर थैलीमेंसे सुपारी-इलायची और दो-चार लौंग निकालकर शीरींको दे दिए।

"यह खा लीजिए। आपकी तबियत फ़ौरन ठीक होजायगी।"

"थैंक यू!"

शीरींके मुँहसे इलायचीकी भीनी-भीनी खुशबू उड़कर हवामें फल गई और निर्मलको ऐसा लगा जैसे कोई इलायची इतनी खुशबूदार हो ही नहीं सकती।

"अब क्या हाल है?"

"अब तो अच्छी है तबीयत।" उसके गालोंपर लाली लौट आई थी। सड़कके चक्कर भी अब खत्म हो गए थे, और दूर बर्फ़ीले पहाड़ोंसे आती हुई ठंडी हवा बहुत भली मालूम होती थी।

शीरींने निर्मलकी तरफ़ कृतज्ञतासे देखा। कितना प्रेम, कितना भोलापन था उन आँखोंमें!

अब सड़क इतनी ऊँचाईपर पहुँच गई थी कि मोटर प्रायः बादलोंमेंसे होकर गुज़र रही थी। चारों ओर धुंध ही धुंध छाई हुई थी। देवदार और चीड़के पेड़ सूरजको छिपाए हुए थे। ज़मीन गीली थी। शायद रातको यहाँ वर्षा हो चुकी थी।

"ओह, कितनी सर्दी हो रही है!" शीरींने कहा, "लाइए यह शाल डाल लें।" और यह कहकर उसने अपनी सुन्दर, कोमल सुरमई रंगकी शाल अपनी और निर्मलकी टाँगोंपर डाल दी।

धुंध इतनी गहरी थी कि मोटरसे गज़भर आगे भी कुछ दिखाई न देता था। लारी रेंगती, रास्ता ढूँढती, आगे बढ़ रही थी।

शालके नीचे निर्मलको अपने बाँए हाथसे किसी कोमल नाज़ुक वस्तुके स्पर्शका अनुभव हुआ। परन्तु उसे कोई आश्चर्य न हुआ, मानो वह इसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

शीरींका हाथ बर्फकी तरह ठंडा हो रहा था। निर्मलने उसे अपने गरम हाथ में इस तरह ले लिया जैसे कोई गोदमें बच्चेको लेकर या हाथमें कबूतरको लेकर थपकी देता है।

कितना छोटा-सा, प्यारा-सा हाथ था शीरींका! उसके कोमल स्पर्शमें कितना प्रेम, कितना उद्वेग, कितनी मासूमियत थी। उसमें संसारके सृष्टिसे लेकर प्रलय तकके समस्त सुखोंका समावेश था। उसमें दावत भी थी और वादा भी।

लारी धुंधको चीरती हुई ऊपर चढ़ती जा रही थी। शीरीं खामोश थी। चारों ओर निस्तब्धता थी। निर्मलने आँखें बंद कर लीं। अब वह मुसाफिरोंसे भरी हुई लारीमें न था; वह एक काल्पनिक नौकामें शीरींके साथ बादलोंपर तैरता हुआ असीम ऊँचाईकी ओर चला जा रहा था।

उतार

उतार कितना कष्टदायक था और कितना अप्रिय!

धीरे-धीरे गरमी बढ़ती जा रही थी। गुलमर्गसे जब वह प्रातःकाल चले तो सरदीके मारे काँप रहे थे। श्रीनगर पहुँचते-पहुँचते धूप निकल आई और ओवर-कोट उतार देने पड़े। श्रीनगरसे जब वह दूसरी लारीमें चले तो निर्मल पुलोवर और कोट पहने हुए था और शीरीं अपना सुरमई स्वैटर। परन्तु बारामूला पहुँचते-पहुँचते उन कपड़ोंमें भी गरमी मालूम होने लगी। "आखिर कोट क्यों नहीं उतार देते?" शीरींने कहा।

बात ठीक थी, लेकिन न जाने क्यों निर्मलको शीरींका कहनेका ढंग बुरा मालूम हुआ। फिर सोचा, "नहीं शायद मेरे कानोंका दोष हो।"

उसने कोट उतारकर गोदमें रख लिया। आपसे आप उसके हाथने शीरींके हाथको ढूँढ लिया। वही छोटा-सा, नाजुक-सा हाथ।

सड़क घाटीकी समतल भूमिपर होकर चली जा रही थी। दोनों ओर सफ़ेदेके लम्बे-लम्बे पेड़ संतरियोंकी तरह तने खड़े थे। दूर धूपमें गुलमर्गके

पहाड़ोंकी बर्फ़से ढँकी हुई चोटियाँ चमक रही थीं। एकके बाद दूसरे मीलका पत्थर आता जारहा था! यह उसके जीवनकी सबसे महत्त्वपूर्ण और सुखमय यात्राकी मंज़िलें थीं। एक महीना पहले वह इनको गिनता हुआ काश्मीर पहुँचा था और अब एक महीना बाद उनको गिनता हुआ वापस आ रहा था।

एक महीना! तीस दिन! एक दिनमें चौबीस घंटे! मगर ज़िन्दगीको महीनों, दिनों और घंटोंके हिसाबमें नहीं नापा जासकता। केवल जीवित रहना ही ज़िन्दगी नहीं है। यों तो जानवरोंकी भी ज़िन्दगी होती है। कहते हैं, पौदोंकी ज़िन्दगी होती है। परन्तु मनुष्यका जीवन उसके उद्गारों और अनुभवोंके संचयका नाम है। एक क्षणमें मनुष्यको अमर जीवनका सार प्राप्त हो सकता है और ऐसा भी हो सकता है कि तीस बरस जीवित रहनेपर भी जीवन-हीन रहे। काश्मीर आने तक जीवन भी ऐसे ही जी रहा था। पशुओं और पौदोंकी तरह। खाता था, पीता था, सोता था, दफ़्तर जाता था, वापस आता था। इस व्यर्थ आवश्यक दौड़-धूपसे उकता जाता तो एक कहानी या कविता लिखकर एक कल्पित संसारके सुखोंमें अपने आपको खो देनेका प्रयत्न करता। मगर कल्पना और सत्यमें वही अन्तर था जो शीरीं और गोविंदी या ज़मीन और आसमानमें था। एक महीने तक वह दोनों साथ रहे थे। पिछले तीस दिन उसकी आँखोंके सामने एक चल-चित्रकी भाँति फिर गए। 'डल' के शांत जलपर शिकारेकी सैर, शीरींका सिर उसके काँधेपर, शालीमारमें एक चेनारके साएमें पिकनिक, गुलमर्गकी मख़मली हरियाली जिसपर लेटे-लेटे उन्होंने पूरे-पूरे दिन बिताए थे। खिलनमर्ग तक घोड़ोंपर चढ़ाई, वहाँसे उपुत्तर। श्वेत हिमाच्छादित पहाड़ियाँ, नीली झील और उसमें तैरते हुए बर्फ़के बड़े-बड़े ढेर। और शीरींके पास होनेके कारण तो इनमें दुगुना आकर्षण पैदा हो जाता। प्रकृति सुंदर थी, परंतु प्रकृतिका सुन्दरतम उपहार तो स्वयं शीरीं थी। कितनी मादक थी उसके बालोंकी महक। कितनी सुंदर थीं उसकी आँखें! कितने

नाज़ुक और कोमल थे उसके हाथ! नाज़ुक और कोमल, और बर्फ़की तरह ठंडे। नहीं, ठंडे नहीं, गर्म पसीनेसे भीगे हुए।

एक झटकेके साथ निर्मलका कल्पित संसार छिन्न-भिन्न होगया। शीरींका हाथ अभी तक उसके हाथमें था और दोनों हाथ पसीनेमें तर थे। 'मैं भी कितना बेवकूफ़ हूँ। इतनी गर्मीमें बेचारीका हाथ अपने हाथमें लिए बैठा हूँ।' यह सोचकर उसने अपना हाथ धीरेसे खींच लिया। मगर न जाने क्यों उसे सहसा प्रतीत हुआ कि शीरींको अपने हाथका छूट जाना अच्छा मालूम हुआ।

शीरीं सोच रही थी, 'एक वह दिन था कि निर्मल मेरे हाथको छू लेना ही अपना सौभाग्य समझता था। और आज उसको मेरा वही हाथ बुरा लगने लगा है।' उसने अपने हाथको देखा तो सुर्ख़ और पसीनेसे तर पाया। अपना रूमाल निकालकर उसने निर्मलको जलानेके लिए हाथको देरतक रगड़कर सुखाया।

'अच्छा, अब हमारा पसीना भी इतना बुरा लगता है!' निर्मलने सोचा और जलनके मारे उसने भी अपना रूमाल निकालकर अपना हाथ पोंछ लिया।

ड्राइवरने पेट्रोल बचानेके लिए इंजन बन्द कर दिया था और लारी ढालपर आपसे आप लुढ़कती हुई तेज़ीसे नीचे जारही थी।

"शीरीं, तुमने घर खत लिख दिया?" यह प्रश्न अप्रासंगिक था, परन्तु निर्मलने पूछ लिया।

"कितनी बार तो कह दिया हाँ-हाँ-हाँ।" शीरीं गरमी, पेट्रोलकी बू और मोटरके चक्करमेंसे हैरान थी इसलिए गुस्सा निर्मलपर उतारा। वह निर्मलको बता चुकी थी कि उसने अपनी माँको खत लिख दिया है कि वह कर्सेटजीके बजाय निर्मलसे शादी करना चाहती है। और वह चाहती भी यही थी। मगर इस बातको बार-बार दुहरानेसे चिढ़-सी होगई थी, क्योंकि उसका बयान सच भी था और झूठ भी। खत उसने

ज़रूर लिखा था और इसी आशयका, मगर अभीतक डाकमें डाला न था। आखिरी वक़्त न जाने क्यों वह निश्चय न कर सकी थी और उसने यह सोचकर उसे बैगमें रख लिया था कि लाहौरमें कई रोज़ तो ठहरना ही है, वहाँसे भेज दिया जाएगा।

निर्मलने शीरींको यह न बताया था कि उसकी शादी होचुकी है और इसको वह झूठ न समझता था, क्योंकि गोबिन्दीसे उसकी शादी 'मारे बाँधे' की थी। अब उसने तय कर लिया था कि गोबिन्दी और लाहौर और जलालपुर जट्टाँको हमेशाके लिए छोड़कर वह बंबई चला जायगा। वहाँ उसको किसी फ़िल्मी कम्पनीमें कहानी और डायलाग लिखनेका काम मिलनेकी काफ़ी उम्मीद थी। फिर शीरींसे 'सिविल मैरिज' करके वह अपनी सारी उम्र वहीं गुज़ार देगा। यह था उसके जीवनको सुखमय बनानेका कार्यक्रम!

वर्षा ऋतु बीत चुकी थी। अब आसमान साफ़ था और ज़मीन खुश्क। यद्यपि वह अब भी तीन हज़ार फुटकी ऊँचाईपर थे, धूप काफ़ी कष्टदायी मालूम होरही थी। दूसरी ओरसे कोई लारी, या मोटर आती तो धूलका एक बादल उड़ाती हुई और न सिर्फ़ उनके कपड़े धूलमें अट जाते बल्कि महीन-महीन गर्द उनके मुँह और नथनोंमें घुस जाती। शीरीं इस संकटसे बचनेके लिए अपने सिरपर रेशमी रूमालको मुँहपर नक़ाबकी तरह ओढ़े हुए थी। एक बार रूमाल हटाया तो चेहरा पसीनेमें नहाया हुआ था।

'बेचारी!' निर्मलने प्रेमसे उसकी ओर देखते हुए सोचा, और फिर शीरींको सम्बोधित करते हुए कहा, "खिड़कीके पास गर्द ज़्यादा आरही है। तुम चाहो तो इधर आजाओ।"

उन्होंने अपनी सीटें बदल लीं। उनके शरीरोंमें इस बार भी एक दूसरेसे टक्कर और रगड़ हुई। मगर आज निर्मलको वह मादकतापूर्ण सनसनाहट अनुभव न हुई जो एक माह पहले हुई थी। न जाने क्यों!

बीचकी सीटपर आरामसे बैठकर शीरींने अपना बैग खोला और उसमें

से पाउडर पफ़ निकाला। निर्मलने देखा कि शीरींके गालोंपर पसीनेकी वजहसे पाउडरकी बत्तियाँ-सी बन गई हैं। सुर्खी बहकर न जाने कहाँसे कहाँ पहुँच गई है। होठोंकी लिपस्टिक कहीं लगी हुई थी और कहींसे गायब हो गई थी और गर्द जम जानेके कारण होठोंका रंग लालके बजाय चाकलेट जैसा हो गया था। कमानदार भवोंके ऊपर हल्की-सी नीली-सी कमानें उभर आई थीं। शायद कई दिनसे उनको कतरकर बारीक न बनाया था। जिस चेहरेको देखकर कभी निर्मलके हृदयमें उमंगें उठने लगती थीं, आज उसको बिल्कुल आकर्षक मालूम न हुआ। न जाने क्यों?

शायद शीरीं समझ गई थी कि निर्मल क्या सोच रहा है। इसीलिए वह जल्दी-जल्दी पाउडर और सुर्खीकी सहायतासे अपने चेहरेकी "मरम्मत" कर रही थी। निर्मलने एक बार कहा था कि शीरींसे मिलनेसे पहले उसे उन लड़कियोंसे नफ़रत थी जो पाउडर और लिपस्टिक लगाती थी। "तुम्हारी बात और है।" उसने कहा था, मगर शीरींको बहुत शंका थी कि निर्मल अब भी इस प्रकारके शृंगारको नापसन्द करता था इसलिए ऐसे अवसरपर वह अपनेको तुच्छ समझने लगती। परन्तु अपनी दृष्टिमें अपना महत्व बनाए रखनेके लिए वह सोचती, 'निर्मल योग्य और बुद्धिमान सही परन्तु वह फिर भी गँवार है। बंबई जैसे शहरकी "सोसायटी" में मिला-जुला होता तो उसके विचार इस प्रकारकी रूढ़िवादिताओंसे भी शुद्ध हो जाते।' और यह विचार आते ही वह सोचने लगती कि 'बंबई जाकर वह अपने मित्रोंसे निर्मलका परिचय किस प्रकार कराएगी। और यदि निर्मलने उन्हें पसन्द न किया? या उन्होंने निर्मलको पसन्द न किया?' यह प्रश्न अक्सर उसके दिमागमें पैदा होता मगर वह उसको बार-बार अपने मस्तिष्कसे निकाल देती।

लारीके सफ़रमें अगर इंजन न बिगड़े तो पंचर होना तो आवश्यक है। घंटेभरसे ज़्यादा रुकना पड़ा। पहली बार निर्मल और शीरींने दूसरे मुसाफ़िरोंको देखा। दो-एक तो वही थे जो पिछली बार भी उनके साथ ही

आए थे और उन दोनोंकी ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टिसे देखकर आपसमें खुसर-पुसर कर रहे थे। एक गोरा-सा बड़ी नाकवाला नौजवान था। फ़िल्म एक्टरों जैसी मूँछें बनाए हुए, सिरपर बाँका फ़ेल्ट हैट, गलेमें रेशमी मफ़लर और कोटके बजाय हवाई जहाज़के उड़ाकों जैसी चमड़ेकी आस्तीनोंका जैकट, मुँहमें पाइप। शीरींको देखकर वह इस तरह आगे बढ़ा जैसे कोई शिकारी चिड़िया अपने शिकारपर झपटती है।

"आप मिस बाटलीवाला हैं?" उसने पहले अंग्रज़ीमें पूछा और शीरींका जवाब पाकर उसने निःसंकोच हाथ मिलाकर गुजरातीमें बात करना शुरू कर दिया। एम छे, केम छे, सुँ छे, सारो छे, यह छे, वह छे! निर्मलकी समझमें कुछ न आया कि वह क्या बातें कर रहे थे। बीचमें शीरीं ने निर्मलका परिचय भी कराया, "यह मेरे दोस्त हैं, मिस्टर निर्मल कुमार। काश्मीरमें हमारी मुलाक़ात हुई थी। और आप हैं मिस्टर दारूवाला। मोटरोंका कारोबार करते हैं। और सारे बंबईमें सबसे अच्छा टैंगो डान्स करते हैं।"

"आप खुद क्या बुरा नाचती हैं। पिछले क्रिसमसपर याद है जब ताजमें कोकाको और आपको इनाम मिला था।" और फिर निर्मलको सम्बोधित करके, "हाँ, तो मिस्टर कुमार! मुझे याद पड़ता है हम कहीं मिले हैं। हाँ, खूब याद आया, ताजके हार्बर बारमें। नहीं, नहीं, क्रिकेट-क्लबमें।" और जब निर्मलने आजिज़ीसे जवाब दिया कि ताज और क्रिकेट-क्लब क्या उसने तो कभी बम्बई शहर ही नहीं देखा तो मिस्टर दारूवालाने फिर शीरींसे 'एम छे, केम छे' का क्रम शुरू कर दिया।

कुछ देरतक निर्मल बेवक़ूफ़ोंकी तरह खड़ा उनकी गुजराती बातचीतका अर्थ समझनेका प्रयत्न करता रहा, मगर 'ताज' 'ग्रीन' 'सी-सी-आई' 'महालक्ष्मी' 'रेस कोर्स' 'गोल्डेन फ़ान' के सिवा कोई शब्द समझमें न आया। एक बार उसको शङ्का हुई कि वह दोनों राजनीतिके विषयपर बातें कर रहे हैं, क्योंकि 'स्टालिन' और 'चर्चिल' के नाम बार-बार लिए जा

रहे थे। मगर फिर 'बेटिंग' का ज़िक्र हुआ तो पता चला कि यह घुड़दौड़के घोड़े हैं, राजनीतिज्ञ नहीं। निर्मल प्रेमके मामलेमें प्रेमिकाको अपनी "संपत्ति" समझने और दूसरोंसे ईर्ष्या रखनेमें विश्वास न करता था, मगर शीरींका उस अजनबी नौजवानसे घुल-मिलकर बातें करना उसे अच्छा न लगा।

वह टहलता हुआ सड़कके दूसरे किनारेपर चला गया जहाँ कुछ और मुसाफ़िर पत्थरोंकी दीवारपर बैठे हुए थे। उनमेंसे एक वयस्क साहबने निर्मलसे पूछा, "क्यों बाबूजी! यह जो बाई आपके साथ हैं यह आपकी पत्नी हैं?" निर्मलने जल्दीसे जवाब दिया, "जी नहीं, आपको भ्रम हुआ है, वह केवल मेरी मित्र हैं। काश्मीरमें मुलाक़ात हुई है।" वह साहब धीरेसे मुस्करा दिए।

जैसे-तैसे करके लारी रवाना हुई तो शीरींसे फिर बात करनेका अवसर मिला। परन्तु वह आप ही आप कोई अंग्रेज़ी गीत गुनगुना रही थी। निर्मलको अगर किसी चीज़से चिढ़ थी तो वह अंग्रेज़ी गाना था।

"क्या गा रही हो?"

"अरे, तुमने यह गीत नहीं पहचाना? 'डाउन द अर्जेन्टाईन वे' में कारमन मिरांडा गाती है ना!" निर्मलने यह फ़िल्म ही न देखा था। परन्तु गीत उसे अर्थ-हीन और बेतुका मालूम हुआ। 'मा मा या केरो, मा मा या केरो!'

"भला यह भी कोई गाना है! मुझे तो बकवास मालूम होता है।"

"तुम्हें तो हर अंग्रेज़ी चीज़ बकवास मालूम होती है।"

"और तुम्हें हर अंग्रेज़ी चीज़ पूज्य मालूम होती है।"

न जाने क्यों दोनोंके बातचीतके ढंगमें कटुता आती जारही थी। शायद गरमीके असरसे, जो प्रतिक्षण बढ़ती जारही थी।

शीरीं सोच रही थी, 'यह भी कोई बात है कि अंग्रेज़ी नाच न नाचो। अंग्रेज़ी गाना न गाओ। आखिर ज़िन्दगीमें यही तो दो-चार दिलचस्प चीज़ें हैं।'

निर्मल सोच रहा था, 'क्या बंबई जाकर और शीरींके दोस्तों—दारूवाला जैसे दोस्तों—के साथ रहकर मुझे भी अंग्रेज़ी नाच-गानेकी आदत डालनी पड़ेगी ?'

शीरींके साथ सुखमय जीवन व्यतीत करनेके जो स्वप्न वह देख रहा था, दारूवालासे मिलकर भंग होरहे थे। क्या शीरींके सब दोस्त इसी तरहके होंगे ? क्या उसके साथ वह ऐसा ही व्यवहार करेंगे ? तीस दिन उन दोनोंने एक-दूसरेके साथ मित्रता और हँसी-खुशीमें गुज़ारे थे। उन्होंने अपने हृदय और अपने विचारोंमें एक सामंजस्य पाया था। ऐसा मालूम होता था कि नियतिने उन दोनोंको एक-दूसरेके लिए ही बनाया था। परन्तु जो लड़की दारूवालासे हँस-हँसकर घुड़दौड़ों और नाचघरोंकी बातें कर रही थी वह तो कोई और ही शीरीं थी, जिससे वह अबतक बिल्कुल अपरिचित रहा था। क्या इस शीरींसे भी उम्र-भरका विवाह सम्भव था ?

उम्र-भरका निबाह ! गोबिन्दीसे भी तो उसे उम्र-भरका निबाह करना था। बेचारी गोबिन्दी ! जो अंग्रज़ी गाना तो क्या, हिन्दुस्तानी गाना भी न जानती थी। जो केवल रोटी पकाना जानती थी। उसने गोबिन्दीसे कहा था, 'मैं काश्मीर जारहा हूँ। महीने-भरके लिए तुम जलालपुर जहाँ चली जाओ।' और उसने जवाब दिया था, 'बड़ी अच्छी बात है, काश्मीर जाकर आपका स्वास्थ्य भी ठीक हो जाएगा। यहाँ काम भी तो बहुत करते हैं आप। दिन-भर दफ़्तरमें सिर खपानेके बाद फिर रातको लिखने-पढ़ने बैठ जाते हैं।' और एक बार भी गोबिन्दीने यह नहीं कहा था, 'मुझे भी ले चलिए काश्मीर।' कहा था तो बस यह कि, 'इस थैलीमें मैंने सुपारी, इलायची, सौंफ और लौंग रख दिए हैं। सुना है पहाड़पर जब मोटर चढ़ती है तो चक्कर आने लगते हैं।' और इस बार गोबिन्दीके शब्दोंको याद करके वह गुस्सा होनेके बजाय मुस्करा दिया।

"क्या बात है जो आप ही आप मुस्कराए जारहे हो ?"

"कुछ नहीं ।" उसने झूठ बोला, "यूँ ही । कोई खास बात नहीं ।" और फिर बात बदलनेके लिए "हाँ शीरीं, यह तो बताओ अपनी माँके नाम वह पत्र तो डाल दिया था ना ?" और निर्मलका जी चाहा कि शीरीं जवाब दे 'नहीं' । न जाने क्यों ?

"फिर वही सवाल ! कहो तो सौगंध-पत्र लिख दूँ ।" शीरींके उत्तरमें कटुता थी और व्यंग था ।

कुछ देर फिर खामोशी । दोनों तरफ़ तनाव । लारीके पिछले डिब्बेसे दारूवालाके सीटी बजानेकी आवाज़ आई । कोई अंग्रेज़ी नाचकी धुन थी । शीरींके नाजुक ऊँची एड़ीके जूते लारीसे फ़र्शपर नृत्य करने लगे । निर्मलने सड़कके किनारे लगे हुए वृक्षोंको देखना शुरू कर दिया ।

"निर्मल !" इस बार शीरींकी आवाज़में नमी थी ।

"हाँ, कहो क्या बात है ?"

"क्या तुम्हें अंग्रेज़ी नाचसे सचमुच इतनी नफ़रत है ?"

"है तो । बात यह है कि मैं ठहरा गँवार, हिन्दुस्तानी क़िस्मका आदमी ।" और उसे आशा थी कि शीरीं कहेगी, 'ऐसा है तो तुम्हारी खातिर मैं भी नाचना छोड़ दूँगी ।' मगर शीरींने कहा, "यह तो बड़ी मुश्किल हुई ।" और फिर खामोश होगई ।

साढ़े-पाँच बजेके क़रीब वह डोमेलके डाक-बँगलेपर पहुँचे । ड्राइवरने कहा, "आज तो रावलपिंडी नहीं पहुँच सकते । रातको यहीं ठहरना होगा ।"

चले तो थे इस इरादेसे कि इसी रातको रावलपिंडी पहुँच जाएँगे । मगर निर्मलको डोमेल ठहरना अच्छा मालूम हुआ । उसने सोचा, 'इसी डाक-बँगलेमें हमारा पहली बार प्रेम हुआ था । उस वातावरणमें हम एक दूसरेको फिर पासकेंगे । और आजकी जली-कटी बातें भुला सकेंगे ।'

मगर दारूवालाकी मुसीबत सिरपर थी । इनके कमरोंके बगलमें उसने भी कमरा ले लिया और शीरींसे आकर सदाकी तरह बेतकल्लुफ़ीसे बातें करनी शुरू कर दीं ।—'देखिए, आजकल रेलमें 'रश' बहुत होता है ।'

इसलिए सीटें रिज़र्व करानेके लिए यहाँसे तार दे देना चाहिए। नहीं तो बड़ी मुश्किलमें पड़ जाएँगे। कहिए तो तार दे दूँ दो फ़र्स्ट क्लास की सीटोंके लिए ?"

शीरींने कहा, "मिस्टर निर्मलकुमारसे पूछ लीजिए। उनको भी तो सीट रिज़र्व करानी होगी। और हाँ, देखिए एयर-कन्डीशण्ड कम्पार्टमेन्टके लिए तार दे दीजिएगा, नहीं तो सैरका सब मज़ा किरकिरा हो जाएगा।"

बरामदेमें निर्मल यह बातें सुन रहा था। उसने जल्दी-से अपने कमरेमें जाकर अपने बटुएमें देखा तो केवल साढ़े ग्यारह रुपए निकले। तीनसौ में बड़ी मुश्किलसे महीने भरतक गुज़ारा हुआ था। वह भी इस तरह कि शीरीं हमेशा अपना खर्च खुद उठाती थी और कभी-कभी निर्मलका भी; अब सिर्फ़ साढ़े ग्यारह रुपए रह गए थे। डाक-बँगलेका किराया और खानेका दाम देकर मुश्किलसे छः-सात रुपए बचनेकी उम्मीद थी। वह तो लाहौर तक फ़र्स्ट छोड़ थर्डमें भी नहीं जासकता था। और शीरींसे रुपया माँगना उसका स्वाभिमान गवारा न करता था।

"कहिए मिस्टर कुमार! तो आपके लिए भी तार दे दूँ ?" दारूवालाने कमरेमें झाँककर कहा।

"मेरे लिए....जी....तकलीफ़ न कीजिए।"

"अरे भई, इसमें तकलीफ़की क्या बात है। डाकखाने तो जा ही रहा हूँ। जहाँ दो सीटोंके लिए तार दूँगा, वहाँ तीनके लिए भी दे सकता हूँ। या आपने पहलेसे सीट रिज़र्व करा रखी है ?"

निर्मलने यह बहाना ग़नीमत जाना। "जी हाँ, मैं तो पहले ही रिज़र्व करा चुका हूँ।"

और बराबरके कमरेमें यह सुनकर शीरींके माथेपर बल पड़ गए। अपनी सीट रिज़र्व करा ली और मेरा ख्याल भी न किया ?

डाकखाना बन्द होचुका था। तार न जासका, मगर दारूवालाको बक-बक करनेका एक विषय मिल गया,—"अजीब आफ़त है। न जाने

कलकी ट्रेनमें कोई फ़र्स्ट क्लास एयर-कन्डीशण्ड बर्थ मिले भी या नहीं। या मुमकिन है सेकेन्ड क्लासमें जाना पड़े।" और उसने सेकेन्ड क्लासका ज़िक्र किया जैसे उस दर्जेमें सफ़र करना उसका बहुत बड़ा अपमान था। "मगर मिस्टर कुमार, आप तो मज़ेमें रहे, पहलेसे इन्तज़ाम कर लिया।"

शीरीं अन्दर कमरेमें कपड़े बदल रही थी। इसलिए दारूवालाकी बातोंसे छुटकारा पानेका कोई उपाय न था। उसकी ज़बान थी कि कैंचीकी तरह चलती जारही थी। "अरे मिस्टर कुमार, आप बंबई आइए, बंबई! फिर आपको ज़रा दुनियाकी सैर कराई जाए। मेरी बात मानिए तो नवम्बर में आइए। रेसेज़ भी होंगी। फिर ज़रा लुत्फ़ रहेगा। मगर यह बताए देता हूँ कि अगर आपको नवम्बरमें आना है तो अभीसे खत लिखकर ताजमें कमरा रिज़र्व करा लीजिए वरना बड़ी मुश्किल पड़ जाएगी। ताजमें आप होंगे तो फिर हरवक्त मुलाक़ात हुआ करेगी। मैं दोपहरका खाना अक्सर वहीं खाता हूँ। और फिर हर डान्स-नाईटपर तो डिनर वहींपर होता है।" और यह कहते-कहते उसने वहीं बरामदेके फ़र्शपर डान्सके अन्दाज़में थिरकना शुरू कर दिया। "ओह ब्वाय! ओह ब्वाय! ऐसा डान्स फ़्लोर दुनियामें कहीं नहीं है।...मगर आप तो शायद बाटलीवाला पैलेसमें ठहेंरगे! मलाबार हिलपर! अहा हा! क्या मकान बनाया है मिस शीरींके पिताने! हर चीज़ विलायतसे मँगाई है। यहाँ तक कि फ़र्नीचर साराका सारा फ्रांससे बनकर आया था। बहुत शौक़ीन आदमी हैं, मिस्टर बाटलीवाला भी घटिया चीज़को तो कभी गवारा कर ही नहीं सकते।"

निर्मलके दिमागमें एक ख्याल बिजलीकी तरह कौंध गया, 'भला वह एक घटिया दामादको क्यों गवारा करने लगे?'

शीरीं बाहर आई तो दोनों उसका स्वागत करनेको खड़े होगए। श्रीनगरसे चलते समय वह शलवार-क़मीज़ पहने थी, मगर इस वक्त उसने साड़ी पहने थी और वह भी खास पारसी ढंगसे। दारूवाला बोला, "थैंक

गॉड ! आपने वह गँवारू कपड़े तो उतारे ।" शीरींने जवाब दिया, "कभी-कभी पहननेके लिए पंजाबी लिबास भी बुरा नहीं होता !"

झूलेके पुलपर फिर सैरको गए, मगर एक महीने पहलेका जादू टूट चुका था। दारूवालाकी उपस्थितिने उनको ठीक तरहसे बात करनेका अवसर भी नहीं दिया। वापसीपर शीरीं कुछ सोचती हुई बच्चोंकी तरह ज़ोर-ज़ोरसे बैग हिलाती आगे-आगे जारही थीं। और दारूवाला निर्मलके कान खा रहा था।—"भई कपड़े सिलवाने हों तो 'ला फ़ान्ज़' में सिलवाओ। यह लाहौरके दरज़ी क्या जानें सूट सीना किसे कहते हैं।" इतनेमें शीरींके हाथसे फिसलकर बैग कुछ दूर जागिरा। क्लिप खुल गया और सब चीज़ें बिखर गईं। निर्मल और दारूवाला दोनों चीज़ोंको उठानेको दौड़े। पाउडर पफ़, लिपस्टिक, बालोंके पिन, कुछ रुपए और नोट, रूमाल.....और एक खत! इससे पहले कि शीरीं उसको झपट ले, निर्मलने पता पढ़ लिया—"मिसेज़ रोशन बाटलीवाला, बाटलीवाला पैलेस, मलाबार हिल, बंबई।" यह वही खत है जो निर्मलसे शादी करनेके बारेमें उसने माँको लिखा था और उसके कथनानुसार डाकमें डाला जाचुका था।

"अरे यह खत!—लो—डालना ही भूल गई।" झूठ बोलनेका असफल प्रयत्न करनेमें वह हकला रही थी। मगर निर्मलको इसपर ज़रा-भी गुस्सा न आया। यह देखकर कि खत अभी डाकमें नहीं पड़ा था उसको सन्तोष होगया। उसने कहा, "खैर, अब डाकमें भेजनेसे क्या फ़ायदा? इससे पहले तो तुम खुद ही बंबई पहुँच जाओगी।"

अगले दिन सबेरे जब लारी डोमेलसे चली तो निर्मलने देखा कि शीरीं कुछ अनमनी-सी है। बैग गिरनेके बाद उन दोनोंने उस खतका कोई ज़िक्र न किया था।

लारी तेज़ीसे ढालपर चली जारही थी। ड्राइवरने उनसे वादा किया था कि फ्रान्टियर मेलके छूटनेसे पहले ही वह उनको रावलपिंडी पहुँचा देगा।

"शीरीं !" निर्मलने नरमीसे कहा।

"हाँ, निर्मल !" शीरींकी आवाज़में एक अजीब-सी वेदना थी।

"तुमने जानकर वह खत न डाला था ना ?" निर्मलने अंग्रेजीमें सवाल किया ताकि ड्राइवर उनकी बातें न समझ सके।

शीरींने जवाबमें धीरे-से सिर हिला दिया।

"तुम निश्चय न कर पाई थीं हमारे बारेमें, यही है ना ?" जवाबकी आवश्यकता ही न थी।

"तुमने ठीक किया, शीरीं। मेरे तुम्हारे बीच एक दीवार खड़ी है। हम कभी खुश न रह सकेंगे।" और यह कहकर उसको ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई बड़ा बोझ उसके सिरसे उतर गया हो।

शीरीं कुछ देर चुप रही। अब रावलपिंडी नज़र आने लगा था। फिर वह बोली, "मगर हम दोस्त तो रहेंगे ना ? मुझसे नाराज़ तो नहीं हो ?"

निर्मलने सहृदयतासे जवाब दिया, "भला, यह हो सकता है शीरीं ! तुमने एक महीनेके लिए मेरे निरीह जीवनको रसमय बना दिया। यह अहसान कम है तुम्हारा ? तुम भूल जाओ तो और बात है। शायद मैं कभी बंबई आऊँ, तुमसे मिलनेके लिए बाटलीवाला पैलेसपर जाऊँ तो तुम मुझे देखकर कहो, 'हाँ, याद आ गया, कहीं देखा है आपको'।"

शीरींने निर्मलके ही शब्दोंमें उत्तर दिया, "भला यह कभी हो सकता है !"

और फिर निर्मलने कहा, "अच्छा तो याद रखना, मैं आऊँ तो शलवार-क़मीज़ पहनना। कभी-कभी पहननेके लिए पंजाबी लिबास भी बुरा नहीं होता।"

रावलपिंडीके स्टेशनपर पहुँचकर वह मुसाफ़िरोंकी भीड़में खो गए। दारूवालाने भाग-दौड़ कर एक बाबूकी मुट्ठी गरम की और फ़र्स्ट क्लासके

एक दर्जेमें दो सीटोंका प्रबंध कर ही लिया। मगर यह एयर-कंडीशण्ड नहीं था। अगस्तकी दोपहरी। पंखोंमें से भी गरम हवा निकल रही थी।

रेल चलनेवाली थी कि निर्मल नज़र आया। दारूवालाने कहा, "कहिए, आपको कहाँ जगह मिली?"

निर्मलने गाड़ी के दूसरे सिरेकी ओर इशारा कर दिया।

"ओह! एयर-कंडीशण्ड! बड़े खुशकिस्मत हैं आप!"

"जी हाँ, बिल्कुल एयर-कंडीशण्ड दर्जा है।"

गार्डने सीटी दी और निर्मल शीरीं और दारूवाला दोनोंसे हाथ मिलाकर अपने थर्ड क्लासके खचाखच भरे हुए डिब्बेमें आकर बैठ गया।

अब रेल तेज़ीसे लाहौरकी ओर चली जारही थी। निर्मल खिड़कीके पास बैठा हुआ गरम लूके थपेड़े खारहा था। मगर इस कष्टमें भी एक सुख था। अब वह कल्पना और विचारोंकी ऊँचाइयोंसे उतरकर ज़मीनपर आगया था। वास्तविकता उस बिना गद्देकी सीटकी भाँति कठोर और कष्टदायी थी, मगर उससे वह परिचित था और उसपर वह विश्वास कर सकता था। निर्मलके चारों ओर धूपमें तपे हुए शरीरोंवाले किसान बैठे थे। वह ताजमहल और क्रिकेट-क्लबकी बातें नहीं कर रहे थे, बल्कि खेतोंकी, वर्षाकी और फ़सलकी। एक मुंशीजी ऐनक लगाए अखबारमें से स्टालिन और चर्चिलकी ताज़ा मुलाक़ातका हाल पढ़कर सुना रहे थे; मगर यह चार टाँगवाले स्टालिन और चर्चिलका ज़िक्र नहीं था। वह शरमीली चौदह बरसकी दुलहन जो एक कोनेमें बैठी थी, उसके चेहरेपर शरमकी लाली थी—पाउडर और 'रूज़' की नहीं। इस दरजेमें सचमुचके इन्सान बैठे थे। उसके बाप जैसे खुरदरे, मैले-कुचैले, गँवार, अक्खड़, अनपढ़—मगर, इन्सान! सचमुचके इन्सान! मेहनत मज़दूरी करनेवाले, ठोकरें खानेवाले इन्सान! उनकी मुहब्बतमें उसे एक विशेष अपनेपनका अनुभव होता था। वह अपनी और उनकी दरिद्रता और दुर्दशापर संतुष्ट नहीं था।

मगर वह जानता था कि उनको नीचे छोड़कर वह स्वयं ऊपर चढ़ गया तो उसको वास्तविक सुख प्राप्त नहीं होगा।

खेत, पेड़, बिजलीके खम्भे, किसानोंके झोंपड़े, गाँव, स्टेशन—यह सब उसके समानेसे तेज़ीसे घूमते हुए चले जारहे थे। और उन सबमें उसको एक चेहरा झाँकता हुआ दिखाई दे रहा था। पीला-पीला चेहरा, छोटी-छोटी आँखें, मुँहपर राख मली हुई, गालोंपर चूल्हेकी कालिख। मगर इस वक्त यह चेहरा उसको संसारमें सबसे सुँदर लग रहा था। और उसके कान रेलके पहियोंकी घड़घड़ाहटमें बराबर एक ही आवाज़ सुन रहे थे, "क्योंजी, आप आगए ?"



एक पायली चावल



नागिनोंकी तरह बल खाती, चींटीकी रफ़्तारसे रेंगती, शहदकी मक्खियोंके छत्तेकी तरह भनभनाती दो लम्बी क़तारें—एक मर्दोंकी और एक औरतोंकी—सरकारी अनाजकी दूकानकी तरफ़ बढ़ रही थीं। औरतोंकी क़तार मर्दोंकी क़तारसे भी ज़्यादा लम्बी—कोई एक फर्लांग लम्बी। उसका आखिरी सिरा सड़कके नुक्कड़पर से मुड़ता हुआ एक तंगसी गलीमें पहुँचा हुआ था। देरमें आनेवाली औरतें एकके पीछे एक खड़ी होती आरही थीं। उनको तो अनाजकी दूकानकी दूरसे झलक भी दिखाई नहीं देती थी। बस, कुछ दिखाई देता था तो अपनेसे अगली औरतका सिर।

कई सौ औरतें—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी। मुसलमान औरतें बुरक़ा ओढ़े हुए और बग़ैर बुरक़ेके। काले चमकीले जिस्मवाली मछलीवालियाँ, जिनके बालोंके फूलोंकी खुशबू उनके कपड़ोंकी मछलीकी बूमें मिलकर हवामें फैल रही थी। फ्राक पहने हुए, नंगी टाँगें, पाँवमें चप्पल, ग़रीब देसी ईसाई गोआनी औरतें; घटिया क़िस्मके पेंयट और पाउडरमें नहाई हुई, नक़ली रेशमके मोज़े और ऊँची एड़ीके जूते पहने एंग्लो-इंडियन लड़कियाँ; फूलदार रेशमी शालें कंधेपर डाले गोरी-चिट्टी काले बालोंवाली यहूदिनें; सुडौल जिस्म की मराठिनें और बहुत दुबली या बहुत मोटी गुजरातिनें। क्लर्कोंकी बीबियाँ, मज़दूरोंकी बीबियाँ, मामूली दर्जेके दूकानदारोंकी बीबियाँ, टैक्सी ड्राइवरोंकी बीबियाँ, ब्याही हुई बीबियाँ और बिना ब्याही बीबियाँ। मोतियेकी कलियाँ और मुरझाए हुए फूल, सेंयट

और पसीना, मछलीकी बू और नारियलके तेलकी बू और दोपहरकी धूपमें फैलती हुई वह खुशबूएँ और बदबूएँ। मराठी और गुजराती, और हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ी ज़बानोंमें बातचीत मिला हुआ शोर,—जो कुछ भी समझमें न आता। कई लाख शहदकी मक्खियोंकी भनभनाहट, इंतिज़ार, साठ सेकिंडोंका एक मिनट, और साठ मिनटोंका एक घंटा। एक घंटा, दो घंटे, तीन घंटे और नागिनकी तरह बल खाती हुई चींटीकी रफ़्तारसे रेंगती हुई औरतोंकी यह लम्बी क़तार धीरे-धीरे बढ़ती हुई। जितनी देरमें अगले सिरेसे एक औरत अनाज लेकर जाती दो नई औरतें पीछे आकर खड़ी हो जाती थीं। दो सौ औरतें, ढाई सौ औरतें, तीन सौ औरतें, साढ़े-तीन सौ औरतें कितने सब्रके साथ सुबहसे इंतज़ार कर रही थीं! एक टाँग थक जाती तो दूसरीके सहारे खड़ी हो जाती थीं। संतोष और लगनका एक अनोखा दृश्य जैसे पुजारिनें मंदिरके द्वार खुलनेका इंतज़ार कर रही हों। एक नया शिवालय जहाँ हिन्दू और मुसलमान, पारसिनों और यहूदिनें सब पूजाके लिए आई थीं। हरएकके हाथमें एक थैला, हरएकके दिमाग़में बस एक ख्याल, एक हविस, एक इच्छा—एक पायली* चावल!

दुर्गा आई और औरतोंकी क़तारके आखिरी सिरेपर सबसे पीछे खड़ी होगई। उसको आज यहाँ आनेमें देर होगई थी। सुबहसे उसके सिरमें, शरीरमें, पेटमें बहुत दर्द हो रहा था। उसकी हालत ऐसी न थी कि वह आज यहाँ घंटोंके लिए आकर खड़ी होती, मगर मजबूरी थी। घरमें चावलके आखिरी बचेखुचे दाने भी खत्म हो चुके थे। दो वक़्त बाज़ारका खाना खाया। आज कई दिनके बाद दूकान खुली थी। अगर उसने आज चावल न खरीदे तो मालूम नहीं फिर कबतक घरका खाना नसीब न हो। और इस बीचमें अगर कहीं दिन पूरे हो गए और वह वक़्त आगया जिसका इन्तज़ार था, तो, फिर तो और भी मुश्किल हो जाएगी।

---

* पायली: अनाज तौलने की एक नाप जो बम्बई में इस्तेमाल होती है। एक पायली चावल लगभग साढ़े तीन सेर होते हैं।

दुर्गाका पति एक कारखानेमें काम करता था। सुबह घरसे निकलता तो कहीं चिराग जले वापस आता, वह भी दिनभर मशीनकी तरह काम करनेके बाद थका-माँदा। बाज़ारका सब सौदा-सुलफ़ दुर्गाको ही लाना पड़ता था। वह मज़दूरी पेशा औरत ठहरी उसको काम करनेमें न कोई संकोच था, न कोई दिक़्क़त। वह जबतक अपने माँ-बापके साथ गाँवमें रहती थी खेतीके काममें हाथ बटाया करती थी। चरखा कातती, चक्की चलाती, अपने बाप-भाईके लिए रोटी पकाकर खेतपर लेजाती, गाय-बैलोंके लिए कुट्टी काटती, दूध दुहती और रातको सोनेसे पहले उनके पाँव मिलाकर बाँधती........। ब्याहके बाद जबसे शहर आई थी अपने नंदूकी तरह वह भी कारखानेमें काम करती थी। दस घंटे रोज़ाना वहाँ काम करती, फिर घर आकर चूल्हा फूँकती। मगर उसको कभी यह ख़्याल भी नहीं हुआ था कि वह बहुत मेहनत करती है। अपने नंदूकी ख़ातिर वह सब-कुछ करनेको तैयार थी। उसका नंदू! कितना अच्छा था। उसने बंबई लाकर दुर्गाको कितनी सैरें कराई थीं—चिड़ियाघर, चौपाटी, अपोलो बन्दर, कई बार सिनेमा ले गया। ऐसी चीज़ें दुर्गाने अपने गाँवमें कहाँ देखी थीं! नंदू उसका बहुत ख़्याल रखता था। और मज़दूरोंकी तरह न वह शराब पीकर आता था, न अपनी बीबीको पीटता था। और अभी छठा महीना पूरा नहीं हुआ था कि उसने दुर्गाका कारख़ाने जाना बन्दकर दिया,—"अब तुझे घरमें आराम करना चाहिए। अब तू मेरे लड़केकी माँ बननेवाली है ना?" नंदूने हंसकर कहा था, "देख दुर्गा, लौंडा ले लूँगा, लौंडिया नहीं चाहिए।"

नागिनकी तरह बल खाती हुई, चींटीकी रफ़्तारसे रेंगती औरतोंकी क़तार अनाजकी दूकानकी तरफ़ बढ़ी जारही थी। अब दुर्गाके पीछे भी आठ-दस औरतें क़तारमें आ मिली थीं। कहीं-कहीं आपसमें बहस हो रही थी। एक पारसिन बाज़ारकी बढ़ती हुई क़ीमतोंकी आलोचना कर रही थी। एक खोजन अनाजकी कमीका दोष कांग्रेसके लिए सिर रख रही थी। एक ईसाई औरतका विचार था कि यह सब महात्मा गाँधीका क़सूर है। न वह

सरकारसे लड़ाई मोल लेते, न सरकार हिन्दुस्तानियोंको सज़ा देनेके लिए अनाजपर पाबंदी लगाती।

"कांग्रेस और महात्मा गाँधीको क्यों दोष देती हो। मालूम नहीं है कि सरकारने लाखों मन गेहूँ ईरान, ईराक़, और मिस्र भेज दिया है?" एक गुजरातिन बोली।

"हाँ सरकारने अनाज बाहर भी भेज दिया है," एक मराठिन चमक-कर बोली, "मगर हम हिन्दुस्तानी कब बेक़सूर हैं। बनियों और आढ़तियोंने कुछ कम अनाज अपने घरोंमें भर रखा है?"

"और क्या! हम एक पायली चावलके लिए पाँच-पाँच और छः-छः घंटे खड़े रहते हैं और यह बनिए हैं कि हरएकने हज़ारों मन अनाज छिपाकर रख छोड़ा है और चोरीसे दुगनी तिगुनी क़ीमतोंपर बेच रहे हैं।"

"ऐसे लोगोंको तो फाँसी दे देनी चाहिए।"

"वह दूसरे मुल्कोंमें होता है। हमारे यहाँ तो उनको रायबहादुर और खानबहादुरके खिताब मिलते हैं। लड़ाईके कामोंके टेके दिए जाते हैं। यह हिन्दुस्तान है!"

दूसरी तरफ़ लड़ाईकी खबरोंपर बहस हो रही थी।

"अरे तुम्हें नहीं मालूम यह जरमन और जापान एक ही थैलीके चट्टे-बट्टे हैं। जापानको मौक़ा मिल गया तो रूसपर हमला करनेसे बाज़ न आएगा।"

"अजी तो मानलो कि उसकी शामत भी आगई। यह बर्मा और फ़िलीपाइन नहीं हैं कि हड़प कर गया और डकार भी न ली। यह रूस है, रूस!" यह किसी पत्रकारकी बीबी थी जिसका पति शायद सोतेमें भी खबरोंकी हेड लाइनें पढ़ा करता था।

रूस! धूपमें दुर्गाका सिर चकरा रहा था, मगर उसने सोचा यह शब्द "रूस" मैंने कहीं सुना है और न जाने क्यों उसको ऐसा मालूम हुआ जैसे

इस "रूस" और उसकी ज़िन्दगीमें कोई गहरा सम्बन्ध है। हाँ! अब याद आया। नंदू एक बार उसे एक जलसेमें लेगया था। मज़दूरोंका जलसा था, कोई पचीस-तीस हज़ार मज़दूर होंगे। कई हज़ार तो औरतें ही थीं। हरतरफ़ लाल-लाल झंडे, और झंडोंपर हथौड़े और हँसियाका निशान। बीचमें एक ऊँचा-सा चबूतरा जिसपर खड़े होकर लोग व्याख्यान दे रहे थे। और दुर्गा यह देखकर दंग रह गई कि व्याख्यान तो इतनी दूर चबूतरेपर हो रहा है मगर आवाज़ उसके पास ही एक खंभेपर लगे हुए काले भोंपूमेंसे आरही है। अजीब-सी आवाज़ जैसे कोई कुँएमें मुँह करके बोल रहा हो। और यह आवाज़ कह रही थी, "भाइयो! हिटलरके खूनी भेड़ियोंने रूसपर हमला कर दिया है। रूस जो मज़दूरोंका अपना मुल्क है। रूस जहाँ मज़-दूरोंका अपना राज्य है......दुनियाके मज़दूरोंको चाहिए कि वह रूसकी मददके लिए खड़े हो जाएँ।" और फिर "सोवियत-रूस ज़िन्दाबाद" के नारे हज़ारों गलोंसे इसतरह निकले कि मालूम होता था आसमान फट पड़ेगा।

कितनी देर होगई थी उसको खड़े-खड़े। दुर्गाने मुड़कर देखा कोई सोलह-सत्रह औरतें उसके पीछे थीं। अब वह क़तारके साथ बढ़ते-बढ़ते सड़कके नुक्कड़पर आगई थी। गरदन टेढ़ी करके वह अनाजकी दूकानका लाल साइनबोर्ड भी देख सकती थी। मगर अब भी कमसे कम सौ औरतें उसके और एक पायली चावलके दरम्यान बाधक थीं। 'मालूम नहीं क्यों यह दूकानदार इतनी देर लगाता है!' दुर्गाने एक थकी हुई टाँगसे दूसरी थकी हुई टाँगपर बोझ बदलते हुए सोचा। और औरतें भी बोलते-बोलते थक गई थीं और नरमी और खामोशीने पूरी क़तारको अपने पंजेमें दबोच रखा था। नीली वर्दी पहने एक पुलिसका सिपाही सामने पेड़के नीचे ऊँघ रहा था। उसको ऊँघते देखकर दुर्गाकी तमाम थकान, उसकी टाँगोंका दर्द, पेटकी चुभन सब उसकी आँखोंमें सिमट आई। उसका जी चाहा वहीं सड़ककी पटरीपर सिर रखकर लेट जाए। उसके पैर डगमगाए तो उसने अपनेसे अगली औरतके कन्धेका सहारा ले लिया।

"अरी मेरी बहन ज़रा अपने ही सहारे खड़ी रहो !" कोई बुढ़िया औरत थी। उसकी आवाज़में कोई गुस्सा या जलन नहीं थी, मगर दुर्गा शर्मिंदा होकर घबरा-सी गई। अनायास ही पीछे हटी तो इस दफ़ा सख्त डाँट पड़ी। "......! अन्धी है, मेरा पाँव कुचल दिया !" और जब यह औरत दुर्गासे बचनेके लिए सहसा पीछे हटी तो क़तारके आखिर तक गालियों और कोसनेका कई भाषाओंमें शोर मच गया।

दुर्गा शरमसे पानी-पानी होगई। उसने दाँत किचकिचाकर अपने बदनको क़ाबूमें किया और ज़मीनपर नज़रें गड़ा दीं। एक बार उसने सोचा कि एक पायली चावलकी आशा छोड़कर घर भाग जाए। मगर फिर सोचा कि नंदू शामको थका-हारा आएगा। तो क्या खाएगा। उसका अच्छा-अच्छा नंदू जो उसकी खातिर आजकल कई-कई घंटे "ओवर टाइम" काम करता है। और अब तो वह दूकानके क़रीब ही आगई थी अगर किसी न किसी तरह एक-आध घंटा और बीत जाए तो फिर वह चावल लेकर ही घर जाएगी।

मगर यह पेटमें दर्द क्यों होरहा है ? जैसे कोई आरी चला रहा हो। दुर्गा पीड़ाके मारे पसीनेमें नहा गई थी। उसका सिर फिर चकरा रहा था। और पेटके अन्दर दर्दकी लहरें उठ रही थीं—वेदना और पीड़ाका ज्वार-भाटा। मालूम होता था कि कोई दुश्मन भाला लिए बार-बार हमला कर रहा हो। एक वारका ज़ख्म नहीं भरने पाता कि दूसरा वार करता है। क्या दिन पूरे होगए हैं ? क्या वह वक्त आगया है जिसका वह इतने दिनोंसे इन्तज़ार कर रही थी ? नहीं, यह कैसे हो सकता है। अभी तीन ही दिन तो हुए दाईने कहा था कि दस-पन्द्रह दिन और लगेंगे। शायद यह कोई और क़िस्मका दर्द है। दर्द और तकलीफ़के इस तूफ़ानमें दुर्गा न जाने किसतरह पूरी क़तारके साथ-साथ आपसे आप दूकानके दरवाज़े तक पहुँच गई। अब सिर्फ़ एक औरत उसके सामने थी। जब यह औरत भी दूकानके अन्दर चली गई तो दुर्गाने देखा कि उसको भी सीढ़ीपर चढ़कर जाना होगा। एक-एक

फुटकी यह दो सीढ़ियाँ उसको ऐसी मालूम हुईं जैसे उसको गाँवका मंदिर-वाला टीला जिसकी चोटीपर जानेके लिए सौ से ज़्यादा सीढ़ियोंपर चढ़ना पड़ता था। हे भगवान्! वह उस डगमगाती हुई सीढ़ीपर चढ़कर दूकानके अन्दर कैसे जा सकेगी।

उससे अगली औरत थैलीमें एक पायली चावल लिए मुस्कराती, पसीना पोंछती दूकानसे बाहर निकल आई। दुर्गाके पीछेवाली औरतने उसको टहोका दिया, "चल बाबा, चल। क्या सो रही है?" बनियेने भी दुर्गाकी तरफ़ देखा और कहा "आ बाई, क्यों देर लगा रखी है?" मगर उसने यह न देखा कि दुर्गाकी सांस पीली पड़ती जारही थी। उसकी टांगें सीढ़ीपर चढ़नेके ख्याल से ही डगमगा रही थीं।

"मुझसे....मुझसे.....मुझे यहीं दे दो भाई।" उसके होंठ सूखे हुए थे, आवाज़ भी मुश्किलसे निकली।

"तुममें कौन से सुर्खाबके पर लगे हैं। लेना है तो अंदर आकर लो।"

"चलती क्यों नहीं आखिर?"

"नहीं लेना है तो रस्ता छोड़ो, दूसरोंको जगह दो।"

हर क़दमपर दुर्गा यही समझती रही कि वह चकराकर गिर पड़ेगी। मगर किसी न किसी तरह घसीटकर उसने अपने शरीरको दूकानके अंदर पहुँचा दिया। काँपते हुए हाथोंसे थैला बनियेकी तरफ़ बढ़ाकर उसने दाम सामने रख दिए जो चार घंटेसे वह अपनी मुट्ठीमें लिए हुए थी और जो पसीनेसे गीले हो रहे थे। दूकानदारने पायलीका नपना उठाया, उसको चावलसे भरकर दुर्गाके थैलेमें डाल दिया। फिर दुर्गाने देखा कि वह मोटा बनिया आपसे आप घूम रहा है, पायलीका बरतन भी, चावलका थैला भी। पूरी दूकान घूम रही है। और घूमते-घूमते यह पूरी दूकान—अनाजकी बोरियाँ, घीके पीपे, दीवारपर लटकी-हुई हनुमानजी की तस्वीर—दुर्गासे टकराई और उसके मुँहसे एक चीख निकल गई।

उसने देखा कि वह चावलके एक ढेरके नीचे दबी पड़ी है। उसकी साँस घुटी जारही है मगर उसके ऊपरसे चावल आपसे आप हटते गए। हनुमानजी उन चावलोंको पायलीके बरतनमें भर-भरकर सब औरतोंको बाँट रहे हैं। 'यह लो एक पायली चावल। लो एक पायली चावल।' और हनुमानजीकी दुम खुशीसे नाच रही है। मगर नहीं, यह तो दुम नहीं, एक नागिन है और उसका मुँह उस औरतकी तरह है जिसने दुर्गाको गाली दी थी। और दमभरमें यह नागिन फूलती गई, बढ़ती गई और दूकानसे लेकर बल खाती हुई नुक्कड़वाली गली तक जा पहुँची। फुंकारें मारती हुई अब वह दुर्गाकी तरफ बढ़ती हुई आरही थी। कोई दममें उसको हड़प कर जाएगी। नागिनने साँस खींचा और दुर्गा खिंची हुई उसके पेटमें चली गई......।

मगर नहीं, यह नागिनका पेट नहीं था, एक अँधेरा कमरा था। अँधेरा और गरमी, हवा बंद, दुर्गाका दम घुटने लगा। अँधेरेमें से किसीकी आवाज़ आई—'यह हिन्दुस्तान है, हिन्दुस्तान !' और फिर अँधेरेमें दूरसे दो लाल रोशनियाँ चमकने लगीं। दुर्गा समझी यह किसी नागिनकी आँखें चमक रही हैं। मगर क़रीब आईं तो उसने देखा कि यह तो लाल झंडे हैं और उनपर हथौड़े और हँसियाका निशान। आपसे आप हवामें उड़े जारहे थे। अब चारों तरफ़ रोशनी होगई। हज़ारों लाखों मज़दूर कुछ अजीब ज़बानमें गाते हुए चले जारहे थे। एक कुँएके अंदरसे आवाज़ आई—"यह रूस है, रूस !" और फिर एकाएक बादल छा गए और बिजली चमकने लगी। दूरसे बादलोंके गरजनेकी आवाज़ आई। नहीं, यह बादल नहीं गरज रहे थे, तोपें चल रही थीं, बम बरस रहे थे—जैसे उसने सिनेमामें देखे थे। एक बम बिल्कुल दुर्गाके पास आकर गिरा और उसके टुकड़े-टुकड़े होकर हवामें उड़ गए........।

और अब उसको ऐसा मालूम हुआ कि वह नंगी पड़ी है। नंगी, एकदम नंगी। दुर्गा शर्मके मारे गड़ गई। मगर वह उठने न पाई थी कि

एक डरावना देव आया और एक बहुत बड़े आरेसे उसका पेट काटने लगा। मगर जब उसको क़रीबसे देखा तो दुर्गाके आश्चर्यकी सीमा न रही, क्योंकि वह स्वयं उसका पति नंदू था। खुशी-खुशी वह उसका पेट काट रहा था और कहता जाता था कि, "लौंडा ले लूँगा, लौंडा! मुझे लौंडिया नहीं चाहिए।" और चारों तरफ़ हज़ारों आदमी जमा हो गए और दुर्गाको इस हालतमें देखकर हँसने लगे। एकने कहा, "यह हिन्दुस्तान है—हिन्दुस्तान।" तो इसपर वह मोटी गुजरातिन बोली, "गाँधीजी को क्यों दोष देती है, उनको तो खुद अंग्रेज़ भूखा मार रहे हैं......।"

सब लोग गायब हो गए। अब दुर्गाने देखा कि वह मोटी हो गई है—उस बनियेसे भी ज़्यादा मोटी। और उसकी तोंद निकल आई है एक मटके बराबर। और फिर किसीने उसकी तोंदमें सुआ भोंक दिया और उसमें से खून निकलने लगा। इतना निकला कि उसके तमाम कपड़े और शरीरसे खून लथपथ हो गया और उसका पेट पिचककर कमरसे लग गया। कहीं दूर कोई दुर्गाके दिमाग़के दरवाज़ेको खटखटा रहा था। कुछ लोग बातें कर रहे थे। और बेहोशीके बादलोंमेंसे दूकान घूमती-घूमती निकल रही थी। घूमते-घूमते......धीरे-धीरे दूकान ठहर गई। सामने हनुमानजीकी तस्वीर पूर्ववत् लटकी हुई थी।

कमज़ोरीकी वजहसे दुर्गा गरदन भी न मोड़ सकती थी। मगर उसको ऐसा लगा जैसे दूकान आदमियोंसे भरी हुई हो। आवाज़ें पहलेकी तरह आ रही थीं, मगर कोई-कोई लफ़्ज़ ही समझमें न आता था।

"......बेचारी.....शायद पहला ही है!......"

"किसी मज़दूरकी.....मालूम नहीं कहाँ होगा....."

"चलो हटो,.... तमाशा....निकालो..."

दुर्गाने अपने पेटमें एक अजीब ख़ालीपन अनुभव किया। हाथ हिलानेकी कोशिश की तो ऐसा मालूम हुआ मानों तमाम कपड़े पानी......नहीं खून....में लथपथ हैं। और एकाएक उसके दिमाग़में एक भयानक ख़याल

बिजलीकी तरह कौंध गया।

"मैंने यहाँ...तमाम दुनियाके सामने बच्चा जना है! हे भगवान! क्या यह बेशरमी मेरी ही किस्मतमें लिखी थी?" उसका बस चलता तो वहीं ज़मीनमें गड़ जाती। ऐसी बेइज़्ज़तीसे तो मौत ही अच्छी थी। कमज़ोरीकी एक लहर आई और दुर्गाने आँखें बंदकर लीं। उसने सोचा, 'अब मैं किस तरह यहाँसे जाऊँगी? सारी दुनिया मेरी तरफ़ उँगली उठाएगी।"

कई मिनट दुर्गा इसी शर्मिन्दगीके सागरमें डूबी रही। कमज़ोरी और बेहोशी फिर छा जानेवाली थी कि...

"कें—एँ—एँ—एँ.........."

एक बच्चेके रोनेकी आवाज़ आई। एक बच्चा। दुर्गाका बच्चा। नंदूका बच्चा।

और, उस नन्हींसी आवाज़ने दुर्गाकी परेशानी और शर्मिन्दगी दूर कर दी। दुर्गाके दिमागपर से कमज़ोरी और बेहोशीके बादल छँट गए। उसने तकलीफकी परवाह न करते हुए गरदन मोड़ी और देखा कि चीथड़ोंमें लिपटा हुआ एक लाल बोटी-सा बच्चा नन्हा-सा मुँह खोलकर रो रहा है। "भूखा होगा," यह सोचकर उसने अपने बच्चे को छाती से लगा लिया और अपनी चोली के बंद खोलने लगी।

और सब लोग मुस्कराते हुए दूकानसे बाहर निकल आए।

कुछ मिनटके बाद दुर्गा दीवारका सहारा लेती हुई उठी और डगमगाते क़दमोंसे मगर आँखोंमें विजयगर्व लिए हुए बाहर चली गई। एक हाथ से वह गोदमें अपने बच्चेको थामे हुए थी, दूसरे हाथमें थैला और थैलेमें एक पायली चावल।



अबाबील



उसका नाम तो रहीमखाँ था, मगर उस जैसा ज़ालिम भी शायद ही कोई हो। गाँव-भर उसके नामसे काँपता था। न आदमीपर तरस खाए, न जानवरपर। एक दिन राम्रू लोहारके बच्चेने उसके बैलकी दुममें काँटे बाँध दिए थे तो मारते-मारते उसको अधमुआ कर दिया। अगले दिन ज़िलेदारकी घोड़ी उसके खेतमें घुस आई तो लाठी लेकर इतना मारा कि लहू-लुहान कर दिया। लोग कहते थे कि कमबख्तको खुदाका खौफ़ भी तो नहीं है। मासूम बच्चों और बेज़बान जानवरों तकको माफ़ नहीं करता। यह ज़रूर जहन्नुममें जलेगा। मगर यह सब उसकी पीठके पीछे कहा जाता था। सामने किसीकी हिम्मत ज़बान हिलानेकी न होती थी। एक दिन बुन्दूकी जो शामत आई तो कह दिया, "अरे भई, रहीमखाँ, तू क्यों बच्चोंको मारता है।" बस, उस ग़रीबकी वह दुर्गति बनाई कि उस दिनसे लोगोंने बात करनी छोड़ दी, कि मालूम नहीं किस बातपर बिगड़ पड़े। बाज़ लोगोंका ख्याल था कि उसका दिमाग़ खराब हो गया है। उसको पागलखाने भेजना चाहिए। कोई कहता था अबकी किसीको मारे तो थानेमें रपट लिखवा दो। मगर किसकी मजाल थी कि उसके खिलाफ़ गवाही देकर उससे दुश्मनी मोल लेता।

गाँव-भरने उससे बात करनी छोड़ दी, मगर उसपर कोई असर न हुआ। सुबह-सबेरे वह हल काँधेपर धरे अपने खेतकी तरफ़ जाता दिखाई देता था। रास्तेमें किसीसे न बोलता। खेतमें जाकर बैलोंसे आदमियोंकी तरह

बातें करता। उसने दोनोंके नाम रख दिए थे। एकको कहता था नत्थू, दूसरेको छिद्दू। हल चलाते हुए बोलता जाता, "क्यों बे नत्थू, तू सीधा नहीं चलता। यह खेत आज तेरा बाप पूरा करेगा? और अबे छिद्दू, तेरी भी शामत आई है क्या?" और फिर उन ग़रीबोंकी शामत ही आ जाती। सूतकी रस्सीकी मार! दोनों बैलोंकी पीठपर ज़ख्म पड़ गए थे।

शामको घर आता तो वहाँ अपने बीबी-बच्चोंपर गुस्सा उतारता। दाल या सागमें नमक कम है, बीबीको उधेड़ डाला। कोई बच्चा शरारत कर रहा है, उसको उलटा लटकाकर बैलोंवाली रस्सीसे मारते-मारते बेहोश कर दिया। ग़रज़ हररोज़ एक आफ़त मची रहती। आस-पासके झोंपड़ों-वाले रोज़ रातको रहीमख़ाँकी गालियों और उसकी बीबी और बच्चोंके मार खाने और रोनेकी आवाज़ सुनते, मगर बेचारे क्या कर सकते थे! अगर कोई मना करने जाए तो वह भी मार खाए। मार खाते-खाते बीबी ग़रीब तो अधमुई हो गई थी। चालीस बरसकी उम्रमें साठकी मालूम होती थी। बच्चे जब छोटे-छोटे थे तो पिटते रहे। बड़ा जब बारह बरसका हुआ तो एक दिन मार खाकर जो भागा तो वापस न लौटा। क़रीबके गाँवमें रिश्तेके एक चचा रहते थे, उन्होंने अपने पास रख लिया। बीबीने एक दिन डरते-डरते कहा, "हुआसपुरकी तरफ़ जाओ, ज़रा नूरूको लेते आना।" फिर क्या था, आग बबूला हो गया—"मैं उस बदमाशको लेने जाऊँ? अब वह खुद भी आया तो टाँगें चीरकर फेंक दूँगा।"

वह बदमाश क्यों मौतके मुँहमें वापस आने लगा था। दो साल बाद छोटा लड़का बुंदू भी भाग गया और भाईके पास रहने लगा। रहीमख़ाँको गुस्सा उतारनेके लिए बस बीबी रह गई थी, सो वह ग़रीब इतनी पिट चुकी थी कि उससे भी न रहा गया और मौक़ा पाकर, जब रहीमख़ाँ खेतपर गया हुआ था, वह अपने भाईको बुलाकर उसके साथ अपनी माँके यहाँ चली गई। पड़ोसकी औरतसे कह गई कि आएँ तो कह देना कि मैं कुछ रोज़के लिए अपनी माँके पास रामनगर जा रही हूँ।

शामको रहीमखाँ बैलोंको लिए वापस आया तो पड़ोसनने डरते-डरते बताया कि उसकी बीबी अपनी माँके यहाँ कुछ रोज़के लिए गई है। रहीम-खाँने जैसा कि वह कभी न करता था, आज ख़ामोशीसे बात सुनी और बैल बाँधने चला गया। उसको यक़ीन था कि उसकी बीबी अब कभी न आएगी।

अहातेमें बैल बाँधकर झोपड़ेके अन्दर गया तो एक बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ कर रही थी। कोई और नज़र न आया तो उसको ही दुम पकड़कर दरवाज़ेसे बाहर फेंक दिया। चूल्हेको जाकर देखा तो ठंडा पड़ा हुआ था। आग जला-कर रोटी कौन डालता? बग़ैर कुछ खाए-पिए ही पड़कर सो रहा।

अगले दिन रहीमखाँ जब सोकर उठा तो दिन चढ़ चुका था। लेकिन आज उसे खेतपर जानेकी जल्दी न थी। बकरियोंका दूध दुहकर पिया और हुक़्क़ा भरकर पलंगपर बैठ गया। अब झोपड़ेमें धूप भर आई थी। एक कोनेमें देखा तो जाले लगे हुए थे। सोचा कि लाओ सफ़ाई ही कर डालूँ। एक बाँसमें कपड़ा बाँधकर जाले उतार रहा था कि खपरैलमें अबाबीलोंका एक घोंसला नज़र आया। दो अबाबीलें कभी अन्दर जाती थीं, कभी बाहर आती थीं। पहले उसने इरादा किया कि बाँससे घोंसला तोड़ डाले। फिर मालूम नहीं क्या सोचा, एक घड़ौंची लाकर उसपर चढ़ा और घोंसले में झाँककर देखा। अंदर दो लाल बोटी-से बच्चे पड़े चूँ-चूँ कर रहे थे। और उनके माँ-बाप अपनी औलादकी हिफ़ाज़तके लिए उसके सिरपर मँडरा रहे थे। घोंसलेकी तरफ़ उसने हाथ बढ़ाया ही था कि मादा अबाबीलने चोंचसे उसपर हमला किया।

"अरी, आँख फोड़ेगी?" उसने अपना खौफ़नाक क़हक़हा मारकर कहा और घड़ौंचीपर से उतर आया। अबाबीलोंका घोंसला सलामत रहा।

अगले दिन उसने फिर खेतपर जाना शुरू कर दिया। गाँववालोंमें से अब कोई उससे बात न करता था। दिन भर हल चलता, पानी देता, या खेती काटता लेकिन शामको सूरज छिपनेसे पहले ही घर आ जाता।

हुक़्क़ा भरकर, पलंगपर लेटकर अबाबीलोंके घोंसलेकी सैर देखता रहता। अब दोनों बच्चे भी उड़नेके क़ाबिल हो गए थे। उसने उन दोनों बच्चोंके नाम अपने बच्चोंके नामपर नूरू और बुन्दू रख दिए थे। अब दुनियामें उसके दोस्त यह चार अबाबील ही रह गए थे। लोगोंको यह हैरत ज़रूर थी कि मुद्दतसे किसीने उसको अपने बैलोंको मारते न देखा था। नत्थू और छिद्दू खुश थे। उनकी क़मरोंपर से ज़ख्मोंके निशान भी क़रीब-क़रीब ग़ायब हो गए थे।

रहीमखाँ एक दिन खेतसे ज़रा जल्दी चला आ रहा था कि कुछ बच्चे सड़कपर कबड्डी खेलते हुए मिले। उसको देखना था कि सब अपने जूते छोड़कर भाग गए। वह कहता ही रहा, "अरे मैं कोई मरता थोड़े ही हूँ।" आसमानपर बादल छाए हुए थे। जल्दी-जल्दी बैलोंको हाँकता हुआ घर लाया। उनको बाँधा ही था कि बादल ज़ोर-से गरजा और बारिश शुरू हो गई।

अंदर आकर किवाड़ बंद किए और चिराग़ जलाकर उजाला किया। रोज़की तरह बासी रोटीके टुकड़े करके अबाबीलोंके क़रीब एक ताक़में डाल दिए। "अरे नूरू! अरे ओ नूरू!" पुकारा मगर वह न निकले। मगर वह न निकले। घोंसलेमें जो झाँका तो चारों अपने परोंमें सिर दिए सहमे बैठे थे। ठीक जिस जगह छतमें घोंसला था वहाँ एक सूराख था और बारिशका पानी टपक रहा था। अगर कुछ देर यह पानी इसी तरह आता रहा तो घोंसला तबाह हो जाएगा और अबाबीलें बेचारी बे-घर हो जाएँगी।—यह सोचकर उसने किवाड़ खोले और मूसलाधार बारिशमें सीढ़ी लगाकर छतपर चढ़ गया। जबतक मिट्टी डालकर सूराखको बंद करके उतरा तो बिल्कुल भीग चुका था। पलंगपर जाकर बैठा तो कई छींकें आईं, मगर उसने परवाह न की और गीले कपड़ोंको निचोड़ चादर ओढ़कर सो गया। अगले दिन सुबह उठा तो तमाम बदनमें दर्द और सख्त बुखार था। कौन हाल पूछता और कौन दवा लाता! दो दिन इसी हालत-

में पड़ा रहा।

जब दो दिन उसको खेतपर जाते हुए न देखा तो गाँववालोंको चिंता हुई। कालू ज़िलेदार और कई किसान शामको उसे झोपड़ेमें देखने आए। झाँककर देखा तो वह पलंगपर पड़ा आप ही आप बातें कर रहा था, "अरे बुन्दू, अरे नूरू! कहाँ मर गए! आज तुम्हें कौन खाना देगा?" कुछ अबाबीलें कमरेमें फड़फड़ा रही थीं।

"बेचारा पागल हो गया है।" कालू ज़िलेदारने सिर हिलाकर कहा। "सुबहको शफ़ाखानेवालोंको पता दे देंगे कि पागलखाने भिजवा दें।"

अगले दिन सुबह जब उसके पड़ोसी शफ़ाखानेवालोंको लेकर आए और उसके झोपड़ेका दरवाज़ा खोला तो वह मर चुका था। उसके पाँयते चार अबाबीलें खामोश बैठी थीं।



मेमार*



बुंदू मेमार खुश था। आज उसका इकलौता बेटा इब्राहीम अपनी बीबी यानी बुन्दूकी बहूको रुखसत कराके घर ले आएगा। आजसे उसके अँधेरे घरमें बहूके आनेसे चाँदना हो जाएगा। शायद उसके क़दमोंकी बरकतसे बुंदूकी क़िस्मत भी जाग उठे और क्या ताज्जुब बुंदूको रोज़गार फिर नसीब हो जाए।

बुंदू मेमार आज खुश था। पूरे पाँच सालके बाद उसके झुर्रियों-भरे चेहरेपर मुस्कराहटकी झलक नज़र आई थी। आज तो उसे हुक़्क़ेके धुएँमें भी नया लुत्फ़ हासिल हो रहा था। अपने टीनके झोपड़ेके सामने दरख्तकी छाँवमें बैठा वह भोली-भाली भटियारीके महलके पीछे सूरज डूबनेका तमाशा देख रहा था। लाल-लाल, गुलाबी-गुलाबी, नीले-नीले, बादल आसमानपर छाए हुए थे जैसे उसकी बहूका चपदार दुपट्टा जो आज ही वह रंगरेज़के यहाँसे रंगवाकर लाया था। दुपट्टा घटिया मोटी मलमलका था। सूसीका पायजामा, जापानी नक़ली रेशमका कुरता, चाँदीके दो कड़े हाथोंके लिए,—बस, यही तो कुल सामान था जो वह अपनी बहूके रुखसतीके जोड़ेके लिए मुहय्या कर सका। आज अगर वह बे-रोज़गार न होता तो क्या ऐसा घटिया जोड़ा और चाँदीका सिर्फ़ एक ज़ेवर देता अपनी बहूको? कुछ नहीं तो अतलसका पायजामा, बनारसी कामका दुपट्टा, सोनेकी बालियाँ, सोनेके कड़े और चाँदीके झाँजन तो ज़रूर ही बनवाता। आखिर एक ही बेटा तो था उसका। आज

* मेमार : मकान बनानेवाला।

उसकी माँ अगर ज़िन्दा होती तो क्या.........

सूरजके साथ बुंदूके चेहरेकी मुस्काहट भी बढ़ते हुए अँधेरेमें डूब गई। उसकी बीबीको मरे बारह बरस हो चुके थे, फिर भी उसकी याद आते ही बुंदूकी आँखें डबडबा आती थीं। कितना चाव था उसको अपने बेटेके ब्याह का! काश, आज वह ज़िन्दा होती!

थोड़ी देरतक बुंदू खामोश बैठा सोचता रहा। फिर जब दूसरे झोपड़ोंमें चिराग़ जलने लगे तो उसको ख्याल आया कि उसका घर अँधेरा पड़ा है। अब उसका बेटा बहूको लेकर आनेवाला ही होगा। ऐसे मौक़ेपर घरमें रोशनी का न होना शायद अपशगुन हो। यह सोचकर वह उठा और अंदर जाकर कड़वे तेलका चिराग़ जलाया। आज उसने अपने घरको खास तौरपर साफ़ किया था। घर क्या था, चार दीवारोंके बीच बारह फुट वर्गाकार कच्ची ज़मीन घिरी हुई थी। ऊपर टीनकी छत जो गरमीके दिनोंमें तपने लगती थी, बरसातमें टपकती थी और जाड़ोंमें ठंडी बर्फ़ हो जाती थी। ऐसे ही कोठरीके झोपड़ोंमें बुंदूके सब पड़ोसी रहते थे। उनकी यह आबादी नई दिल्लीसे मील-भर दूर पहाड़ीपर थी। पाँच बरस पहले तक वह सब आठवीं दिल्लीको बनानेके काममें लगे हुए थे। मगर जब शहर बनकर तैयार हो गया तो वह सब बेकार हो गए। फ़ाक़ोंपर नौबत आ गई। बुंदू खानदानी मेमार था। अपने काममें होशियार। उसके बाप-दादोंने लाल क़िला और जामा मस्जिद ऐसी इमारतें बनाई थीं, बुंदूने वाइसरीगल लाज और असेम्बली चेम्बर। फिर भी वह अब छोटे-छोटे मकानोंके बनानेके काममें चूना गारा उठानेकी मज़दूरी करनेपर मजबूर था। अब जबसे लड़ाई शुरू हुई थी तो लोहे लकड़ी और सीमेन्टकी क़ीमतें बढ़ जानेकी वजहसे बेटेने एक ठेकेदारके मकानपर बैरेकी हैसियतसे नौकरी कर ली थी। उसीकी तनख्वाहसे गुज़ारा होता था। कितना दुख हुआ था बुंदूको जब उसके बेटेने यह नौकरी करना मंजूर किया था। बुंदू मेमारका बेटा, और नौकरी! माना कि उसको दस रुपये माहवार तनख्वाह मिलती थी और खाना मुफ़्त। और इससे

ज़्यादा तो आजकल मेमारोंको भी कहाँ नसीब था। मगर एक मेमार फिर एक मेमार ही होता है। कारीगर, अपने फ़नका माहिर, अपने वक़्त, अपने हाथ-पाँव, अपने दिल और दिमाग़का मालिक। जहाँ जी चाहे काम करे। जिस वक़्त जी चाहे काम करे। वह किसीका नौकर नहीं कि कोई उसके ऊपर रोब जमाए। बुंदूको खानदानी मेमार होनेपर फ़ख्र था। कितना अहम काम था उसका! उसकी ज़रा-सी ग़फ़लतसे दीवार टेढ़ी रह जाए तो पूरी इमारत बदनुमा मालूम होने लगे। वह और उस जैसे मेमार ही तो इंजीनियरोंके नीले नक़शोंको खूबसूरत और शानदार इमारतोंमें तबदील करते थे। ईंट और गारे और चूनेसे ताजमहल जैसा हुस्न, कुतुबमीनार जैसी अज़मत, जंतर-मंतर जैसी हिकमत पैदा करते थे। नक्क़ाश अपनी तस्वीरोंमें रंग भरकर शाहकार बनाता है, बुत-तराश पत्थरकी मूर्तियोंमें जान डालता है, गवैया अपने सितारके तार छेड़कर महफ़िलके दिलमें हलचल मचा देता है, उसी तरह मेमार मेहराबों और स्तम्भों, दीवारों और दरवाज़ों, खिड़कियों और झरोखों, जालियों और कटहरों, मीनारों और गुंबदों, कलसों और कंगूरोंके द्वारा सौंदर्यका निर्माण करता है। और आज एक ऐसे मेमारका बेटा दिन-भर एक जाहिल, बदतमीज़ ठेकेदारकी खिदमत करनेपर मजबूर है!

बुंदू आर्थिक समस्याओंके बारे में कुछ न जानता था। राजनीतिसे उसे कोई लगाव न था। उसको यह शिकायत भी न थी कि वह नई दिल्ली सात समुंदर पारवाले फिरंगियोंके लिए क्यों बसाई गई है। उसको दुःख था तो यह कि मेमारोंकी अब कोई क़दर करनेवाला न रहा था। उसका जैसा होशियार मेमार बे-रोज़गार हो,—आखिर क्यों?

वह इसी उधेड़-बुनमें था कि दरवाज़ेके बाहर किसीके खाँसनेकी आवाज़ आई।

"अरे भई बुंदू! कहो, बहू आ गई?"

"आओ चचा खैरुद्दीन, अंदर आओ। बहूको लेने गया है इब्राहीम। अब आता ही होगा।"

चचा खैरुद्दीन, जिनके बारेमें यह मशहूर था कि शाहजहाँकी सब इमारतोंकी नींवका पत्थर उन्होंने ही रखा था, लाठी टेककर अंदर दाखिल हुए। वह मेमारोंमें सबसे बड़े थे और अपनी बिरादरीके सरपंच, गुरु, नेता, सब-कुछ समझे जाते थे।

"चलो, अच्छा हुआ। इब्राहीमकी बहू आ जाएगी तो तेरे खाने-हुक्केकी तो खबर रखेगी। मगर बुंदू....." यह कहकर चचा खैरुद्दीन रुक गए, गोया कुछ कहते हुए झिझकते हों।

"कहो, चचा!"

"भई, कहना क्या था। ऐसे ही ख्याल आया था कि पूछ लूँ कि रातको तू कहाँ सोएगा।"

"मैं कहाँ सोऊँगा? क्यों?" और फिर एकाएक बुंदू चचा खैरुद्दीनका इशारा समझ गया। आज उसका बेटा अपनी बीबीके साथ पहली रात बसर करेगा। और उनके घरमें सिर्फ़ यह एक कोठरी बारह फुट चौकोर। कमसे कम आजकी रात तो दूल्हा-दुलहनको एकांत चाहिए।

"फ़िक्र मत कर। तू मेरे 'हाँ पड़ रहियो।" यह कहकर चचा खैरुद्दीन कुछ खिसियानी-सी खाँसी खाँसते हुए चल दिए, गोया हमदर्दीके इज़हारसे घबराते हों।

"नहीं, मैं चचा खैरुद्दीनके यहाँ नहीं जाऊँगा।" बुंदूने दिल-ही-दिलमें कहा। "बिरादरीवाले मेरा मज़ाक़ उड़ाएँगे। मैं कहीं और पड़ रहूँगा।" यह सोचकर उसने अलगनीपर से अपनी गाढ़ेकी चादर उतारकर कंधेपर डाल ली। सरदी चमक रही थी। 'कहीं सिर छुपाने की जगह मिली तो यही ओढ़कर लेट रहूँगा। एक रातही की तो बात है।"

इतनेमें उसका बेटा अपनी बीबीको लेकर आ गया। वह उसका दिया हुआ जोड़ा पहने हुए, घूँघट निकाले खड़ी थी। बुंदूकी समझमें नहीं आ रहा था कि इस नई दुलहनसे क्या बात करे!

"क्यों भई इब्राहीम, आ गए तुम लोग!" उसने खामोशी तोड़नेके

लिए बेकार-सा सवाल किया और बगैर जवाबका इंतज़ार किए हुए कहा, "अच्छा तो तुम आराम करो, मैं कहीं और सो जाऊँगा।" और वह झोपड़ीसे बाहर चला गया।

नई दिल्लीका शहर मीलोंतक जगमगा रहा था। पहाड़ीपरसे बुंदूको ऐसा मालूम हुआ जैसे काले संगमरमरके फ़र्शपर किसी मेमारने हीरोंको जड़ दिया हो। "इतने बड़े शहरमें," उसने सोचा, "क्या एक आदमीको रात बसर करनेकी जगह नहीं मिल सकती? कोई कमरा-कोठरी नहीं, तो किसी बरामदेहीमें पड़ रहूँगा।"

नई दिल्लीके रास्ते बुंदूको खूब याद थे। आखिर क्या यह उसके अपने हाथोंसे बनाया हुआ शहर नहीं था? वह हर इमारतसे वाक़िफ़ था। यह है वाइसरीगल लाज, लाट साहबके रहनेका मकान। उसमें कई सौ कमरे हैं। हर कमरा इतना बड़ा कि उसमें बुंदू जैसी दस कोठरियाँ आ जाएँ। गुसलखाने—संगमरमरके, दरजनों। वह भी तो किसी कमरेसे छोटे नहीं। और क्या फ़र्श हैं चिकने और चमकते हुए, चाहे तो खाना बिखेर-कर खा लो। नाचनेका बड़ा कमरा, चारों तरफ़ आईने ही आईने और लकड़ीके फ़र्शपर ऐसा पालिश कि वह भी आईना ही मालूम होता है। उसीपर तो साहब लोग और उनकी मेमें नाचती हैं।

मगर आज वाइसरीगल लाजमें अँधेरा पड़ा हुआ है। हाँ ठीक, याद आया। बड़े दिनोंकी छुट्टियोंमें लाटसाहब कलकत्ते जाते हैं ना! तो यह इतना बड़ा महल खाली पड़ा है। सैकड़ों कमरे, कमरेसे बड़े गुसलखाने, मीलों लंबे बरामदे, आईने जैसे फ़र्शवाला नाचनेका कमरा सब खाली। क्या इसके नौकरोंके रहनेवाले हिस्सेमें किसी गोदामकी कोठरी, किसी बरामदेमें भी बुंदू मेमारको सिर छिपानेकी जगह नहीं मिल सकती? वाइस-रीगल लाजके सदर दरवाज़ेके पास बुंदूको लकड़ीकी काबुकनुमा एक कोठरी नज़र आई। शायद यही खाली पड़ी हो, वह रात यहाँ ही बसर कर सके। मगर वह उधर बढ़ा ही था कि उस काबुकमेंसे एक बड़ी मूँछोंवाला

सिपाही निकला और बुंदूको देखकर ललकारा, "कौन है ?" और फिर क़रीब आकर कहा, "अबे उचक्के ! यहाँ क्या सूँघता फिर रहा है ? क्या लाटसाहबकी कोठीमें सेंध लगानेका इरादा है ?" बुंदू वहाँसे चुपके सरक आया। अपनी इज़्ज़त अपने हाथ है।

नई दिल्लीकी सड़कें हरतरफ़ फैली हुई थीं। चौड़ी साफ़-सुथरी सड़कें। बुंदूके मकानका फ़र्श भी ऐसा नहीं था। बिजलीकी रोशनीसे रातपर दिनका गुमान होता था। मगर बिजलीकी रोशनीमें गरमी भी तो नहीं होती जो बुंदू किसी बत्तीके नीचे खड़े होकर अपने ठिठुरे हुए हाथ ही सेंक लेता। डाकखानेके घंटेने दस बजाए। अब वह सर्दीके मारे काँप रहा था। बुंदू तेज़ीसे चलने लगा ताकि बदनमें कुछ गरमी आ जाए, मगर हवा इतनी ठंडी थी कि मालूम होता था कि उसकी हड्डियोंमें कोई बर्फके भाले चुभो रहा हो।

उसके दिमाग़में वाइसरीगल लाजका नक़शा घूम रहा था। एक आदमीके रहनेका मकान। हाँ, लाट भी तो एक आदमी ही होता है। फिर उसके लिए कई सौ कमरोंकी क्या ज़रूरत है ? और एक-एक कमरा इतना बड़ा कि जिसमें मेमारोंकी सारी बस्ती समा जाए। दरजनों ग़ुसलखाने, मीलों लम्बे बरामदे, नाश्तेका कमरा अलग, दोपहरके खानेका अलग, और वह शीशे जैसे फ़र्शवाला नाचका कमरा,—एक आदमीके लिए यह सब कुछ; और बुन्दू मेमारके लिए जिसने अपने हाथोंसे उन सब इमारतोंको बनाया था रात गुज़ारनेको एक कोठरी भी नहीं ? उम्रमें पहली बार बुन्दूके दिमाग़में एक बाग़ियाना सवाल घूम रहा था—"क्यों ? क्यों ? क्यों ?"

इसी तरह चलते-चलते बुन्दूने दिल्लीकी सारी सड़कें तय कर डालीं, मगर कहीं सिर छुपानेका ठिकाना न मिला। जब सड़कोंकी रोशनियाँ पीछे रह गईं तो बुन्दू एकाएक रुक गया। यह सामने कौन-सी आलीशान इमारत है जो चाँदनी रातमें चमक रही थी। अब उसको याद आया कि यह तो हुमायूँका मक़बरा है। शायद उस दरवाज़ेके किसी कोनेमें पड़ रहनेकी

जगह मिल जाए। बुंदूकी थकी हुई टाँगोंमें फिर जान आ गई और वह और जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ मक़बरेकी तरफ़ चला। मगर दरवाज़ेमें दाखिल भी नहीं हुआ था कि एक चपरासीने डाँट दिखाई, "अबे कौन है तू ? निकल साले यहाँसे, नहीं तो एक रसीद करता हूँ।"

अब बुंदूमें इतनी ताकत भी नहीं रही थी कि उससे बहस करता या उसकी खुशामद ही करता। वह उल्टे पैरों वापस हो गया। फिर नई दिल्ली-की तरफ़ चल दिया। अब उसके दिमाग़में दोहरा कोलाहल मचा हुआ था। बादशाह मर भी जाए तो उसकी मुर्दा हड्डियोंके लिए इतना बड़ा महल चाहिए ? और मेरी ज़िन्दा हड्डियोंके लिए एक कोठरी भी नहीं ? आखिर यह हुमायूँका मक़बरा किसने बनाया था ? मेरे बाप-दादाने। और आज मुझे यहाँसे कुत्तेकी तरह दुतकारकर निकाल दिया...क्यों ? आखिर क्यों ?...लाट साहबका महल...तीन-चार सौ कमरे...चाय पीनेका कमरा अलग... सिगरेट पीनेका कमरा अलग...शराब पीनेका कमरा अलग... और एक बादशाह...जिसको मरे हुए कई सौ बरस हो गए...उसकी क़ब्रके लिए भी महल चाहिए। और बुंदू मेमारके लिए कुछ भी नहीं ? आखिर क्यों ? क्यों ? क्यों ?

जब टाँगोंने चलनेसे जवाब दे दिया तो सड़कके किनारे ही बुंदू चादर लपेटकर लेट गया। नींद सूलीपर भी आ जाती है। बर्फ़के भाले चुभते रहे, मगर बुंदू सो गया।

सुबह पहाड़ीके पीछेसे सूरजने मुँह निकाला और नई दिल्लीपरसे कुहरे-का नक़ाब हटाया। सूरजकी किरणें वाइसरीगल लाजपर पड़ीं, मगर उसकी पत्थरकी दीवारोंको तोड़कर आगे न बढ़ सकीं। एक काल-देवकी तरह वाइसरीगल लाजका साया रेंगता हुआ आया और बुंदू मेमारकी ठिठुरी हुई लाशको रौंदता हुआ आगे बढ़ गया।



राधा

●

राधा आज कितनी खुश थी। दिवालीके दिन हमेशा उसके नाचके मतवालोंकी असाधारण भीड़ होती थी। कमसे कम सौ रुपए आमदनीकी उम्मीद थी। इस अवसरके लिए उसने एक बिल्कुल नया पुजारिनका नाच सोच रखा था और उसे विश्वास था कि वह सबको पसंद आएगा।

राधाने अपना लँहगा ऊपर सरकाया और गोरे-गोरे सुडौल टखनों पर घुँघरू बांधने लगी। साथ-साथ वह गाना भी गुनगुना रही थी जो आजके मुजरेमें वह गानेवाली थी। दूसरे कमरोंमें साज़िन्दोंने अपने-अपने साज़ोंको छेड़ना शुरू कर दिया था। राधाका शरीर संगीतका अनुसरण करनेका इतना आदी हो गया था कि नाचकी गत सुनते ही उसकी तालपर अनायास ही धीरे-धीरे नाचना शुरू कर देता। बचपनसे उसको नाचनेका शौक था। नाच ही उसका मज़हब था, नाच ही उसकी ज़िन्दगी। नाचते वक्त वह अपने सारे दुःखों—सारी तकलीफों को भूल जाती थी। जैसे ही साज़िन्दोंने अभ्यासके लिए एक चुलबुले नाचकी गत बजानी शुरू की राधाके दोनों पाँव ज़मीनपर तालके साथ पड़ने लगे—छुन, छुन, छुन, छुना, छुन; छुन, छुन, छुन, छुना छुन।

"राधा, राधा बेटा!" हाँपते-काँपते, पसीनेमें भीगे हुए उस्तादजी कमरेमें दाखिल हुए। मालूम होता था बड़े मियाँ ज़ीनेपर तीन-तीन सीढ़ियाँ एक-एक छलांगमें नाँघते हुए आ रहे थे।

"क्या है उस्तादजी?" राधाने मुस्कराकर पूछा। वह उस बूढ़े गवैये को बहुत चाहती थी जिसने उसे बचपनमें नाचना और गाना सिखाया

था और जो उस वक्तसे राधाका पिता, मित्र, शुभचिंतक और दलाल सब कुछ रहा था।

"राधा!" उस्तादजी साँसको काबूमें लाते हुए बोले, "आज लक्ष्मी सचमुच हमारी तरफ देखकर मुस्कराई हैं।"

"क्या हुआ उस्तादजी? आखिर कुछ बताओगे भी?"

"यही तो मैं कह रहा हूँ। आज जलपुरके राजा साहब हमारे यहाँ मुजरेमें आ रहे हैं राजा साहब जलपुर! कुछ समझी!"

"जी हाँ!" राधाने अवसरके महत्त्वका रोब खाते हुए जवाब दिया। "मगर इन राजा साहबके बारेमें कुछ तो बताइए। क्या, बूढ़े हैं राजा साहब?"

"बूढ़े!" उस्तादजीने यह शब्द इतने तिरस्कारसे कहा मानो बुढ़ापा तो दुनियामें सिर्फ़ उनका ही हक़ था। "बूढ़े? भई कमाल कर दिया! अरे इन राजा साहबकी तो पैदाइश मुझे ऐसी याद है कि जैसे आजका दिन। इनके स्वर्गीय पिता, राजा साहब ने जो जलसा बेटा होने की खुशी में किया था वह भी याद है। हा—हा—हा, क्या शानदार जलसा था! कुछ नहीं तो पूरी छः टोलियाँ होंगी। राजा साहब की उम्र पच्चीस-छब्बीससे ज़्यादा तो हरगिज़ न होगी। अभी पाँच ही बरस तो हुए उनकी शादी को। तुम्हें याद नहीं? तुम्हारी बेचारी माँ भी तो गई थी उस मौक़ेपर नाचने! मगर, हाँ, तुम तो जब बहुत ही कम उम्र थीं इसलिए तुम्हें......।

उस्तादजीका वाक्य अधूरा ही रह गया क्योंकि उन्हें एकाएक अपनी ग़लतीका आभास हो गया था। उनको राधाकी माँका ज़िक्र न करना चाहिए था। माँके मरनेका राधाको बहुत दुःख था। छः महीने तक तो वह अधमरी हो गई थी। किसी बातका होश ही न रहा था। नाचना भी भूल गई थी। कुछ महीनोंसे उस्तादजी उसका जी बहलानेमें किसी हदतक कामयाब हुए थे। मगर अब भी कोई भूलसे बातचीतमें उसकी माँका ज़िक्र कर देता तो राधा एकाएक दुःखके अथाह सागरमें डूब जाती थी;

"बेटा...बेटा...!" उस्तादजी अपनी गलतीको मिटानेकी कोशिशमें हकलाने लगे। "रोओ मत। मुझे यह ज़िक्र ही नहीं छेड़ना चाहिए था। अच्छा, अब आँसू पोंछ डालो। देखो, आज दीवालीकी रात है। अब जल्दी तैयार हो जाओ, राजा साहब आने ही वाले होंगे।"

एक साज़िन्दा घबराया हुआ आया, "राजा साहब आ रहे हैं।"

राधाने अपने आँसू पोंछ डाले और अपनी हिचकियोंको घोंट दिया। यह रोने-धोनेका समय नहीं है और एक नाचनेवाली वेश्याको कब यह अधिकार है कि वह अपने दुःखको प्रकट करे?—यह सोचकर वह अपनी लाचारीपर खुद ही मुस्कराई। ऐसी मुस्कराहट जिसमें दुःख ही दुःख था।

राजा साहब जलपुर एक लंबे डीलडौलका नौजवान था। राजपूती शान उसके चेहरे और टेढ़े साफ़ेसे टपकती थी। उसके बात करनेके ढंग और बरतावमें एक तरहकी सादगी और बेतकल्लुफ़ी थी। दौलत और ताक़त इंसानको मामूली तकल्लुफ और झिझकसे मुक्त कर देते हैं। मसनद-पर बैठे हुए वह नाचती हुई राधाको निर्लज्ज दृष्टिसे देख रहा था। उसकी अनुभवी आँखें जिन्होंने दुनिया देखी थी—राधाके शरीरकी बोटी-बोटीको टटोल रही थीं, परख रही थीं, दौलतके तराज़ूमें तोल रही थीं। उसके काले चमकीले बाल जिनको नागिन जैसी लहराती चोटीमें गूँथा गया था, उसका मुग्ध कर लेनेवाला लंबा चेहरा, और गुलाबी होंट जो प्यार करनेके लिए ही बनाए गए थे, उसका सीना जिसमें यौवनकी लहरें हिलोरें ले रही थीं, उसकी पतली कमर जो चोली और लहँगेके बीच चमक रही थी, उसके सुडौल गोरे-गोरे टखने जो नाचके बीचमें अक्सर खुल जाते थे। राजाकी आँखोंने इन सब चीज़ोंकी क़ीमत लगाई और मन ही मन उसका मूल्य आँककर निर्णय कर लिया कि दस हज़ारमें भी यह सौदा बुरा नहीं है। और संभव है खरीदनेकी ज़रूरत ही न पड़े, किराए पर मिल जाए। औरतके शरीरकी क़ीमत भी तो क़िश्तोंमें अदा की जा सकती है। राजाने अपनी उम्रमें हर जाति और वर्गोंकी औरतोंके शरीर खरीदे थे। स्वयं उसकी पत्नी

बहुत रूपवती थी। मगर राजा नई चीज़का क़ायल था। हर साल अपनी मोटर बदलता और मोटरके साथ-साथ......

राधाने नाच खतम किया तो उसकी प्रशंसा करनेके लिए कमरेमें राजाके अतिरिक्त कोई न था। और सब तमाशाई राजाके सेक्रेटरीका संकेत पाकर धीरे-धीरे उठ चुके थे। और लोगोंको न देखकर राधाको कुछ निराशा हुई; क्योंकि वह हमेशा एक समूहके सामने नाचना चाहती थी, उनकी प्रशंसा और "वाह वाह" की वह इच्छुक थी। इतने आदमियोंको अपने नाचसे खुश करके उसको भी खुशी होती थी। यही उसका इनाम था और यही उसके जीवनका सबसे प्रकाशमय भाग। इसीसे उसका उत्साह बढ़ता था और दिन-प्रतिदिन अच्छा नाचनेकी उमंग दिलमें पैदा होती थी। उसके कोठेपर तो बीस-पच्चीसका ही जमाव होता था। अगर बाहर किसी शादी-ब्याहके जलसेमें वह जाती तो दो-तीन सौ आदमी उसका नाच देखनेके लिए जमा हो जाते थे। मगर राधा तो चाहती थी कि हज़ारोंकी भीड़ हो और उसमें वह नाचे, और ऐसा नाचे कि हरएक उसकी कला-निपुणताका प्रशंसक हो जाए और हॉल या मंडप तालियोंसे गूँज उठे।

"वाह, वाह! बहुत सुंदर!" हज़ारों तालियोंके शोरके बजाय सिर्फ़ राजाकी तालियोंकी आवाज़ खाली कमरेमें अजीब मालूम हुई। मगर आदतके अनुसार राधाने मुस्कराकर और हाथ जोड़कर राजाको धन्यवाद दिया। पानकी थाली पेश की। राजाने पानका बीड़ा मुँहमें रख लिया और जेबसे सौ रुपयेका नोट निकालकर थालीमें रख दिया। राधाने फिर सलाम किया और अदबसे आँखें झुकाकर, जैसा कि उस्तादजीने उसे सिखाया था, बैठ गई।

"तुम्हारा नाम क्या है?" राजाने सवाल किया।

"राधा।"

"जैसी सुंदर हो वैसा ही सुंदर नाम भी है।" राजाने बिना किसी शर्म या झिझकके कह दिया। और दिलमें सोचा, "आवाज़ भी अच्छी है।"

राजाने केवल हिन्दुस्तान ही नहीं बल्कि तीन साल विलायतमें रहकर वहाँकी भी अत्यंत सुन्दरी स्त्रियोंको देखा था। मगर राधामें कुछ और ही आकर्षण था। कमसे कम उस समय तो उसकी नज़रमें राधाके सामने तमाम दुनियाकी औरतें हेय थीं।

"कहो राधा, मैं पसंद हूँ?" राजा जानता था कि इस वर्गकी औरतों। ऐसी बेतकल्लुफ़ीसे बात-चीत करनेमें कोई हर्ज नहीं है।

साज़िन्दे अपने-अपने साज़ सँभालकर दूसरे कमरेमें चले गए—अनुभवी नायकोंकी तरह जो जानते हैं किस वक़्त रंगमंच छोड़ देना चाहिए।

"हाँ राजासाहब। मगर मैं भला किस क़ाबिल हूँ!" राधाने शिष्टतासे जवाब दिया। अमीर आदमियोंसे इसी तरह बात करनी चाहिए, यही उस्तादजीने सिखाया था। अगर कोई नीचे दर्जेका आदमी ऐसा प्रश्न करनेका साहस करता तो थप्पड़ खाता।

"तो फिर क्या मेरे महलमें रहना पसंद करोगी?" राजाने मतलबकी बात कही।

राधाको इस सवालका जवाब देनेकी इजाज़त नहीं थी। अपने पेशेके कठोर नीति-नियमोंके अनुसार वह शरमाई, उस्तादजीकी तरफ़ सहायता और परामर्शके लिए देखा और एक अदासे पल्लू सँभालती हुई कमरेसे बाहर चली गई।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं, राजासाहब।" उस्तादजीने जल्दीसे कहना शुरू किया, एक ऐसे दूकानदारकी तरह जिसको डर हो कि कहीं गाहक नाराज़ होकर न चला जाय। "यह तो राधाकी खुशक़िस्मती है, उसके भाग जाग उठे हैं।"

राजाने अपने सेक्रेटरीसे कुछ बातें कीं और फिर "अच्छा,—मैं जाता हूँ," कहता हुआ ज़ीनेसे नीचे उतर गया। अब सेक्रेटरी और उस्तादजीमें कारोबारकी बातें शुरू हो गईं।

एक घंटे बाद राधाको मालूम हुआ कि पाँच सौ रुपए माहवारपर

उसे राजाके हाथ "बेच" दिया गया है। राधाको इस खबरसे न कोई खास खुशी हुई, न रंज। कमसे कम राजा ऐसा बदसूरत तो न था जैसा वह मोटा और बदबूदार ज़मींदार, जिसे राधाका पहला गाहक होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

अगले दिन राधा अपने सब साज़-सामानके साथ राजाके महलमें उठ गई। उस रात राधाका कोठा वीरान और अँधेरा पड़ा रहा और बाज़ार-वालोंने राधाके घुँघरुओंकी सुरीली आवाज़ न सुनी।

तीन महीने बाद......

एक सजे हुए कमरेमें राधा अपने विचारोंमें खोई हुई बैठी थी। यह कमरा राजाने खासतौरसे राधाके लिए सजाया था, मगर इस समय उसकी तमाम सजावटपर हल्के-हल्के अँधेरेका आवरण पड़ा हुआ था। बाहर सूरज डूब रहा था। पश्चिमकी तरफ़ पहाड़ियाँ स्याह देव मालूम होती थीं। पेड़ोंके साये धीरे-धीरे बढ़ते हुए तमाम ज़मीनपर छा रहे थे। ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ रहा था, राधाके चेहरेपर भी सोच और चिन्ताका गहरा रंग चढ़ता जा रहा था।

तीन महीनेमें पहली बार उसे सोचने और अपनी दशापर विचार करनेका अवसर मिला था। वह अपने बीते हुए दिनोंके बारेमें सोच रही थी। अपनी जैसी सब औरतोंकी तरह वह वास्तविकतासे परिचित थी और अपने भाग्यपर उसने संतोष कर लिया था। उसे मालूम था कि वेश्याकी संतानका समाजमें क्या स्थान है, और यद्यपि वह इस तिरस्कारको अनुभव करती, मगर समाजसे लड़नेका उसमें न साहस था और न इच्छा ही। वेश्याकी संतान शहरकी सबसे अच्छी नाचनेवाली ही क्यों न हो, वह वेश्या ही रहेगी।

इस आजन्म बन्धनसे कोई छुटकारा न था, और फिर राधा औरोंकी अपेक्षा बहुत आराम से थी। एक जवान, स्वस्थ राजाकी दाश्ता होना इससे तो हज़ार दर्जे अच्छा था कि वह बाज़ारमें बैठकर हर रातको एक नए

गाहकके हाथ अपना शरीर बेचे। यहाँ राजाके अतिरिक्त किसीकी मजाल न थी कि राधाकी तरफ़ आँख उठाकर भी देखे। रही प्रेम और विवाह, और गृहस्थ-जीवनकी इच्छा—जो प्रत्येक स्त्रीके दिलमें होती है चाहे वह वेश्या ही क्यों न हो—सो उस इच्छाको हमेशा अपने दिलके अँधेरे कोनेमें दबा-कर रखना चाहिए; क्योंकि उसके भाग्यमें यह सुख नहीं लिखा था। उस्ता-दजीने उसे बताया था कि मनुष्य भगवानसे नहीं लड़ सकता और जिस दशामें भगवानने उन्हें जन्म दिया है, उसको बदलनेका प्रयत्न करना सबसे बड़ा पाप है।

मगर, आज न मालूम क्यों राधाके दिलमें एक बेचैनी-सी थी। उसके हृदयमें अनेक इच्छाएँ उठ रही थीं—निरर्थक और अप्राप्य। काश, मैं भी एक विवाहित औरत होती! काश, मैं भी एक माँ होती! काश, समा-जमें मेरे लिए भी एक इज़्ज़तकी जगह होती! उस वक्त वह अपनी वर्त-मान परिस्थितिकी कुल सुख-सामग्री न्योछावर करनेके लिए तैयार थी। स्त्रीके हृदयोद्गार और मनोभाव जो समाज, धर्म और नियमसे भी प्राचीन और पुष्ट थे, आज फिर विद्रोहपर प्रस्तुत थे।

राधाकी बेचैनीका कारण जलपुरकी रानी थी। उसीने उसकी यथार्थ-दार्शिताको विचलित कर दिया था।

जबसे वह राजाके महलमें आई थी राधाने रानीके अनुपम सौंदर्यकी प्रशंसा सुनी थी। वह अक्सर सोचती थी, "आखिर इतनी खूबसूरत बीबी घरमें होते हुए राजा साहब मुझ जैसी बाज़ारू औरतके पीछे क्यों फिरते हैं?" (उसको मालूम न था कि दौलतवालोंके शौक़ भी निराले होते हैं। वह घरका अच्छा खाना छोड़कर स्वाद परिवर्तनके लिए अक्सर होटलमें खाना खाते हैं।) कई बार राधाने राजासे कहा कि वह ज़नानखानेमें जाकर एक बार रानीको देखना चाहती है। मगर हर बार किसी न किसी बहानेसे राजाने उसको टाल दिया—"प्यारी, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और तुम मुझसे। मैं नहीं चाहता कि हमारे प्रेममें किसी तीसरेका नाम भी बाधक

हो।" मगर इन बातोंसे राधाको शांति न हुई, बल्कि रानीको देखनेकी इच्छा बढ़ती ही गई। आखिरकार उसने एक दिन बूढ़ी लक्ष्मीसे अपनी इच्छाका ज़िक्र किया। लक्ष्मी राजाके घरकी पुरानी नौकरानी थी और उसको विशेष-रूपसे राधाकी सेवाके लिए नियुक्त किया गया था। जब राधाने बहुत हठ किया तो वह तैयार हो गई और एक दिन जब राजा शिकारपर गया हुआ था वह राधाको फटे-पुराने कपड़े पहनाकर ज़नाने महलमें ले गई। एक सजे हुए दालानमें बीच मसनदपर रानी विराजमान थीं—सौंदर्य, शासन और अभिमानकी मूर्ति। राधा कोनेमें अदबसे लक्ष्मीके पास खड़ी हो गई। किसीने उसको पहचाना नहीं था। जिसने देखा भी वह यही समझी कि लक्ष्मी अपनी किसी भाँजी-भतीजीको रानी साहिबाके दर्शन कराने लाई है। राधा यह सुनकर मुस्करा दी कि उस सभामें उसीकी चर्चा हो रही था।

"रानीजी," एक मुँहचढ़ी दासी कह रही थी, "आप इस कलमुँही राधाको क्यों नहीं निकलवा देतीं? इस चुड़ैलने तो राजा साहबको बिल्कुल अपना कर रखा है।"

रानीने बातका जवाब दिए बग़ैर कहा, "मैंने सुना है कि वह है काफ़ी खूबसूरत!"

"आपकी तो वह जूतीका भी मुक़ाबिला नहीं कर सकती।" एक खुशामदी औरतने जल्दीसे कहा।

"मगर क्या आपको उससे ईर्षा नहीं होती?" क़रीबके एक ज़मींदार की बीबीने सवाल करनेका साहस किया।

रानीका जवाब तेज़ छुरीकी तरह राधाके कलेजेके पार हो गया। "मेरा उसका क्या मुक़ाबिला! मेरे लिए उस बाज़ारी औरतसे ईर्षा करना भी अपमान है। इसके अलावा कौन-सा राजा या ज़मींदार होता है जिसके एक-आध रखैल नहीं होती? बाज़ारकी नाचनेवाली कभी घरकी मालकिन का मुक़ाबिला कर सकती है?"

राधा यह आघात सहन न कर सकी। चुपकेसे अपने कमरेमें वापस चली आई। "बाज़ारकी नाचनेवाली कभी घरकी मालकिनका मुक़ाबिला कर सकती है?" रानीके शब्द अब तक उसके कानोंमें गूँज रहे थे। वह उसको परेशान कर रहे थे। पागल बना रहे थे। इन शब्दोंमें मानो रानीने राधाको आईना दिखा दिया था, जिसमें उसको वास्तविकताका भयानक रूप दिखाई पड़ गया था। उस आईनेमें अपनी असली हैसियत जानकर राधा काँप उठी।

यदि राधामें सामाजिक और आर्थिक प्रश्नोंपर दार्शनिक दृष्टिसे विचार-विनिमय करनेकी योग्यता होती तो वह उन समस्याओंपर विचार करती जो उसकी वर्तमान पतित अवस्थाका कारण थीं। मगर, इस समय तो वह सिर्फ़ एक औरत थी—जिसका सोया हुआ नारीत्व सहसा जाग उठा था। वह तो बस इतना ही जानती थी कि—"बाज़ारकी नाचनेवाली कभी घरकी मालकिन का मुक़ाबिला नहीं कर सकती।" उसका हृदय सहसा अनेक लालसाओं और उमंगोंसे भर उठा। "काश, मैं भी किसीकी ब्याहता बीबी होती! काश, मेरी भी औलाद होती! काश, मैं भी माँ कहलाती! काश, मैं भी किसी घरकी मालकिन होती—चाहे वह घर झोपड़ा ही क्यों न हो!" यह सब असंभव प्रतीत होता था, मगर फिर भी चारों तरफ़के अंधकारमें प्रकाशकी एक किरण दिखाई दी। क्या राजाने हज़ारों बार अपने प्रेमकी घोषणा नहीं की थी? क्या उसने यह नहीं कहा था, "राधा! तुम्हारे लिए मैं आकाशके तारे भी तोड़कर ला सकता हूँ।"?......क्या उसने यह नहीं कहा था, "मैं धर्म और समाजके बंधनोंको नहीं मानता। मेरा धर्म तो बस प्रेम है।"? अगर उसको राधासे वास्तवमें इतना प्रेम था तो कैसे वह उससे शादी करनेसे इनकार कर सकता था? और यदि सचमुच राज़ी हो जाए!—इस विचार-मात्रसे राधाका चेहरा चमक उठा। गृहस्थ-जीवनकी शान्ति, समाजमें एक प्रतिष्ठित स्थान, संतान! मगर, एक विचार था जो राधाके इस सुंदर चित्र

को बिगाड़ रहा था। विवाहके बाद समाज उसे नाचनेकी इजाज़त नहीं देगा और नाच राधाके जीवनका एक आवश्यक भाग था। उसके बिना उसका जीवन फीका और अपूर्ण रह जाएगा। नाचका शौक़ उसकी रग-रगमें समाया हुआ था। वह न केवल नाचना चाहती थी बल्कि एक महफ़िलके सामने नाचना चाहती थी, "वाह-वाह" के नारों और तालियोंकी गूँज सुननेकी इच्छुक थी। वह स्वप्न देखा करती थी कि एक दिन किसी बड़े थिएटरके रंगमंचपर अपना नाच दिखाकर हज़ारों व्यक्तियोंसे अपनी प्रशंसा और अभिनन्दन कराएगी। जबसे वह राजाकी रखैल बनकर आई थी उसको सिर्फ़ एक आदमीके सामने नाचना पड़ता था। यही एक बात उसके दिलमें खटकती रहती थी।

मगर, हमेशाके लिए नाचका विचार छोड़ देना राधा जैसी कलाकारके लिए कैसे सम्भव था? मगर, समाजमें मान प्राप्त करना भी तो कोई सहज काम न था। राधा जैसी सैकड़ों वेश्याएँ इसी आशामें जीवनके दिन गुज़ार देती हैं। पत्नी और माँ बननेके लिए उसे अपने नाचका बलिदान देना ही होगा। राधाने जी कड़ा करके निश्चय कर ही लिया।

बरामदेमें परिचित क़दमोंकी आहट सुनाई दी और दिनभरके शिकारसे थका हुआ राजा अन्दर आया। "कहो जाने-मन क्या हाल है?" उसने बंदूक फेंककर राधाको गले लगाते हुए पूछा। "यह बताओ तुमने आज मुझे कितनी बार याद किया?" राधाने उस्तादजीके सिखाए हुए नखरेके साथ सिर हिला दिया।

राजाने सिगरेट जलाकर धुएँके बादल उड़ाने शुरू कर दिए। शीघ्र उसने अनुभव किया कि राधा किसी गंभीर चिंतामें मग्न है। "राधा, क्या बात है? तुम परेशान मालूम होती हो।" और प्रेम-भरे भावसे कहा, "बताओ, मेरी जान, तुम्हें मेरी क़सम है।"

राधाने पूरे साहससे काम लेते हुए कहा, "राजा साहब...मैं आपसे प्रेम करती हूँ—बहुत प्रेम करती हूँ।" और फिर आँखें झुकाकर बोली,

"राजा साहब, क्या हम दोनोंकी शादी नहीं हो सकती ?"

यह सुनकर राजाको कोई विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। उसे मालूम था एक न एक दिन यह प्रश्न अवश्य उठेगा। उसने सोचा, "यह औरतें सब एक ही साँचेमें ढली होती हैं।" अबतक जितनी लड़कियाँ उसने रखी थीं सबने कुछ महीनोंके बाद विवाहकी इच्छा प्रकट करके राजाका मज़ा किरकिरा कर दिया था। राधा भी आखिर उसी ढर्रेपर आ गई। यद्यपि राजाको आशा हो चली थी कि कमसे कम राधा तो समझदार साबित होगी।

"आप क्या सोच रहे हैं, राजा साहब ?" राधाने गलेमें बाहें डालते हुए पूछा। "क्या आप मुझसे इतना भी प्रेम नहीं करते कि शादी कर लें ?

"यह लड़की अब जी को जंजाल हुई जा रही है," राजाने सोचा। मगर वह खूबसूरत थी और अभी तक उससे भोगी-विलासी राजाका मन नहीं भरा था। अभी कुछ दिनोंतक उसको किसी न किसी प्रकार राज़ी रखना चाहिए।

"प्यारी, मेरी जान राधा !" और यह कहकर उस अनुभवी ऐय्याशने राधाको खींचकर गलेसे लगा लिया और उसके गालों और होठोंपर चुंबनों की वर्षा कर दी। "तो क्या तुम भी इस शादी-ब्याहके ढकोसलोंको मानती हो ? मैं तो बस एक ही चीज़पर विश्वास रखता हूँ—वह है प्रेम ! प्रेम जो दो दिलोंको मिलाता है। प्रेम जो औरत-मर्दके संबंधका आधार है। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और तुम मुझसे प्रेम करती हो। अगर किसी पंडितने हम दोनोंके पल्लू बाँध दिए और हवनके चारों तरफ़ फिराकर कुछ श्लोक पढ़ दिए तो क्या फ़र्क़ पड़ जाएगा ? मैं तो कहता हूँ प्रेमको समाजके बन्धनोंमें जकड़ना एक पाप है, महापाप !"

राधा राजाकी गोदमें लेटी हुई थी, उसके मज़बूत हाथोंमें जकड़ी हुई। राजाके तर्कसे वह प्रभावित न हुई—"मगर राजा साहब, हमें रहना तो इसी संसारमें है और यह समाज बग़ैर ब्याहके प्रेमको पाप समझता है। मैं आपकी

होना चाहती हूँ। सदा-सदाके लिए।"

"राधा, प्रिये! मेरी तो तुम सदा रहोगी। मेरे जीवनमें आजतक कोई ऐसी लड़की नहीं आई जिससे मैंने इतना प्रेम किया हो जितना तुमसे करता हूँ और न अब कभी आएगी। मैं तुम्हारे गालोंकी क़सम खाता हूँ कि मैं सदा तुमसे प्रेम करूँगा।" और राधाके गाल चूमकर कहा, "लो, यह हो गया हमारा ब्याह......दो दिल मिले और ब्याह हो गया......रहा समाज, तो मैं किसीका दास नहीं हूँ। हज़ारोंको खिलाकर खाता हूँ। मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता.....और देखो, प्यारी! मैं तो विलायत भी हो आया हूँ। वहाँ तो कोई शादी-ब्याहमें विश्वास नहीं करता। बस, सब प्रेमके पुजारी हैं।"

राजा बात बनानेमें निपुण था। राधा जैसी सीधी और अनुभवहीन लड़कीको फुसलाकर राहपर ले आना उसके लिए बाएँ हाथका काम था। शादीकी इच्छा प्रेमकी आगमें झुलसकर रह गई।

किसीने दरवाज़ा खटखटाया और एक लौंडीने प्रवेश किया। "राजा साहब!.....रानी साहिबा याद फ़रमाती हैं।" और फ़ौरन ही राजा ज़नाने महलमें चला गया और जाते हुए कह गया, "अभी आया, राधा।"

राधाके हृदयमें एक खलबली मची हुई थी। उसकी समझमें न आता था कि हँसे या रोए! एक तरफ़ इस बातकी प्रसन्नता थी कि राजा जैसा सुंदर और धनी आदमी उसपर मंत्र-मुग्ध था, दूसरी तरफ़ गृहस्थ-जीवनका जो काल्पनिक भव्य महल उसने बनाया था उसके खण्डहर!

बुढ़िया लक्ष्मीके सिसकियाँ लेनेकी आवाज़ आई तो राधाने मुड़कर देखा। वह बेचारी एक कोनेमें बैठी आँसू बहा रही थी। "क्यों लक्ष्मी, क्या हुआ तुझे?" राधाने उसके निकट जाकर पूछा। वह अक्सर लक्ष्मीके बारेमें सोचा करती थी कि उस बुढ़ियाने किस प्रकारका जीवन व्यतीत किया होगा? मगर आजतक उससे सवाल करनेकी नौबत न आई थी। वह स्वभावतः कोमल-हृदय थी और किसीको रोता देखकर उसका दिल भर आता था। "लक्ष्मी,

लक्ष्मी ! बोल न ! क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, बाईजी" बुढ़ियाने आँसू पोंछते हुए कहा ।

"नहीं-नहीं, कोई वजह तो ज़रूर होगी ?"

बुढ़ियाने सिसकियाँ भरते-हुए कहा, "बाईजी, आप बुरा न मानें तो कहूँ ।" और फिर इजाज़त पाकर उसने एक ठंडी साँस ली । "आपकी और राजा साहबकी बातें सुनकर मुझसे न रहा गया । पच्चीस बरस पहले इनके बाप, बड़े राजा साहब, मुझे भी इसी-तरह बहला लाए थे और जब मैंने शादी करनेको कहा तो मुझसे इसी तरहकी बातें की थीं ।"

राधाकी आँखोंके सामनेसे एक परदा हट गया । उसने लक्ष्मीके झुर्रि-योंदार चेहरेकी तरफ़ देखा और फिर आईनेमें अपने सुन्दर मुखको । "क्या पच्चीस वर्ष बाद मेरा भी यही परिणाम होनेवाला है ?"—यह सोचा और एक क्षणमें उसने निश्चय कर लिया ।

अगली रातको राधाके कोठेपर फिर रोशनी हुई और राधाके घुँघरुओं की झंकारसे तमाम बाज़ार गूँज उठा !



दारोग़ा साहब



"दारोग़ा साहब!" एक कान्स्टेबलने अदबसे सलाम करते हुए कहा।

"क्या है?"

"हुजूर उस आज़ादके बच्चेने तो नाकमें दम कर दिया है, अबतक तो उसने अपने साथियोंके नाम बताए नहीं हैं। कहिए तो एक बार फिर कोशिश कर देखूँ।"

"हाँ, एक-आध घण्टे में हाज़िर करो।"

कान्स्टेबल सलाम करके चला गया। दारोग़ा साहबने पानोंकी डिबिया खोली। एक पान खाया और सोचमें पड़ गए। एक हफ़्तेमें इस आज़ादने उनका आराम हराम कर रखा था। रात-दिन यही फ़िक्र रहती कि किस तरह उससे उसके साथियोंके नाम पता लगाए जायँ? मगर तमाम कोशिशें बेकार साबित हुईं। पहले मामूली तरहसे पूछा। फिर माफ़ी और इनामका लालच दिलाया। इसपर भी उसकी ज़बान न खुली तो थोड़ी बहुत मरम्मत की गई। आखिरमें तंग आकर और सख्ती की। जूतोंसे पिटवाया। काल-कोठरीमें बन्द किया। उलटा लटकवाया। मगर वहाँ एक "नहीं" के अलावा दूसरा जवाब न था। दारोग़ा साहब अपने रोब और दबदबेके लिए तमाम सूबेमें मशहूर थे। मुलज़िमोंकी ज़बान खुलवानेकी उनको वह वह तरकीबें याद थीं कि दूर-दूरके थानेदार उनसे मशवरा करने आते थे। सख्तसे सख्त मुजरिम उनके नामसे काँपता था, मगर यह आज़ाद अजब सख्त-जान था। जब उसपर तमाम तरकीबें बेकार साबित हुईं तो

दारोगा साहबने अपने तरकशका आखिरी तीर इस्तेमाल किया जो उसकी तरह कमज़ोर और पढ़े-लिखे राजनीतिक कैदियोंके लिए खासतौरसे ईजाद किया गया था। कुछ दस नम्बरके बदमाशोंको बुलवाकर उनको कुछ खुफिया तौरसे बतलाकर एक-एक बोतल ठर्रेकी दी गई और जब उनपर खूब नशा चढ़ गया तो उनको भी आज़ादके साथ बन्द कर दिया। रात भरमें उन्होंने आज़ादको मार-मारकर अधमरा कर दिया। हर घंटेके बाद जब पहरेदारने पूछा—"क्यों, अब भी अपने साथियोंके नाम न बताएगा?" तो यही जवाब मिला, "मरने से पहले तो नहीं।"

आज़ादकी इस ज़िदको कैसे तोड़ा जाय? रात-दिन यह सवाल दारोगा साहबके दिमाग़में चक्कर काटता रहता था। देखनेमें कमबख्त दुबला-पतला कमज़ोर-सा नौजवान था, मगर उसके खिलाफ़ इलज़ाम इतना संगीन था और उसके साथियोंके नाम इस क़द्र ज़रूरी थे कि दारोगा साहबकी सख्त बदनामी होती अगर उससे क़बूल न कराया जाता। कई महीनेसे उसके खिलाफ़ रिपोर्ट आ रही थीं कि यह और इसके साथी किसानोंमें बग़ावत फैला रहे हैं। बावजूद युनिवर्सिटीके एक ग्रेजुएट होनेके आज़ादने एक गाँवमें रहना पसन्द किया था। मानपुर, जहाँ वह रहता था, एक छोटा-सा गाँव था। मुश्किलसे एक हज़ारकी आबादी होगी। सिर्फ़ आज़ाद ही एक पढ़ा-लिखा आदमी वहाँ रहता था। उसने जाते ही गाँवमें एक स्कूल खोल दिया। दिनमें बच्चोंको और रातको बड़ी उम्रके किसानोंको पढ़ाता। शुरू-शुरूमें गाँववाले उससे डरे रहे, लेकिन जल्द ही उसने अपने सद्भाव और सेवासे सबको मुग्ध कर लिया था। किसीको खत लिखवाने या पढ़वानेकी ज़रूरत होती तो आज़ादके पास आता। किसीको चोट लग जाती तो अपने दवाइयोंके बक्स समेत मददको पहुँच जाता। धीरे-धीरे उसने किताबी पढ़ाई-लिखाईके अलावा गाँववालोंको सफ़ाई, स्वास्थ्य और व्यायामकी भी शिक्षा देनी शुरू की। यहाँ तक तो उसके कामपर किसीने एतराज न किया, पर पुलिसके रजिस्टरमें उसका

नाम मुश्तबा राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंकी फेहरिस्तमें पहले ही शामिल था। लेकिन, कुछ अरसेके बाद उसके खिलाफ़ शिकायतें आने लगीं। गाँवके महाजन रामलालको उससे शुरू ही से चिढ़ थी, इसलिए कि वह किसानोंको क़र्ज़ा लेनेके खिलाफ़ भड़काता था। और अगर किसीको क़र्ज़ा लेना होता तो वह उसके साथ महाजनके घर तक जाता और अपने सामने बाक़ा-यदा रसीद वग़ैरह लिखवाता। इसके पहले अनपढ़ किसान हमेशा महाजन-की लिखी हुई रसीदपर आँख बन्द करके अँगूठे का निशान बना देते थे और अपनी क़िश्तोंकी रसीद माँगनेका तो उन्हें कभी ख्याल भी न आया था। लेकिन आज़ादने उनको महाजनके सब हथकण्डोंसे वाक़िफ़ कर दिया था, जिससे उसकी आमदनी पहलेसे आधी भी न रही थी।

बशीरखाँ पटवारी भी आज़ाद से कोई खुश न था। जबसे उसने गाँवके मामलोंमें दख़ल देना शुरू किया था किसानोंसे लगान, पानीका महसूल वग़ैरहके सिलसिलेमें रिश्वत लेना मुश्किल हो गया था। आजतक इस क़िस्मकी आमदनीको वह अपना पैदाइशी हक़ समझता था और गाँव-वाले भी उसको खुश रखने ही में अपनी खैरियत समझते थे। लेकिन अब...! अब तो वह उससे एक नए और अजीब अंदाज़में बात करते थे। एक दिन तो हद हो गई। बुधुआ किसानसे जब उसके लगान की अदायगीके सिलसिलेमें नज़राना माँगा गया तो वह बोला, "पटवारीजी, अब वह दिन गये। तुम्हें सरकार से हमारी खिदमत की तनख्वाह मिलती है। नज़राना काहे वास्ते चाहिए ?" बादमें मालूम हुआ कि इस बेअदब बातचीतसे एक घंटे पहले ही आज़ादने बुधुआसे बहुत देरतक बातें की थीं।

पंडित शिवप्रसाद भी, जो गाँवके मन्दिरका महन्त था, आज़ादकी मौजूदगीसे खुश न था। उसको शिकायत थी कि यह नौजवान अछूतोंको समाजके विरुद्ध उभारता है। मेहतरोंका एक खानदान था जो हमेशासे गाँवकी सफ़ाईका काम करता आया था। आज़ादके कहनेसे उन मेहतरोंने महन्त, पटवारी, महाजन वग़ैरहके घरोंकी सफ़ाईके बदलेमें जूठा खाना लेनेसे

इनकार कर दिया और उस वक्ततक काम न किया, जबतक अपनी माह-वारी तनख्वाह मंजूर न करा ली। इसके अलावा आज़ादने गाँववालोंको समझा-बुझाकर उन मेहतरोंके बच्चोंको भी अपने स्कूलमें दाखिल कर लिया था, जहाँ वह बाक़ी लड़के-लड़कियोंके साथ पढ़ते थे। और जब उन मेहतरोंने महन्तसे प्रार्थना की कि अगर उसके कथनानुसार वह भी हिन्दू जातिमें हैं तो उनको भी मंदिरमें पूजाकी इजाज़त हो, तब तो शिवप्रसादजी महाराजके क्रोधका अन्त न रहा।

मौलाबख्श गाँवकी अकेली मस्जिदका जाहिल मुल्ला था और महन्त से उसकी हमेशा अनबन रहती थी। दोनों गाँवके हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-दूसरेके विरुद्ध भड़काकर अपना उल्लू सीधा किया करते थे। मौला-बख्श अगर अपनी बेटीकी शादीके लिये मस्जिदकी मरम्मतके नामसे रुपया जमा करता तो शिवप्रसाद फ़ौरन हिन्दुओंको नीचा दिखाता कि उनका मंदिर क्यों न शानदार बनाया जाए? ताकि उनके चन्देसे पंडितानीके लिए एक ज़ेवर और बन सके। मगर आज़ादके मामलेमें यह दोनों एक राय रखते थे कि उसके गाँवमें रहनेसे उनका नुक़सान है। मौलाबख्श कहता था कि आज़ाद किसानों और उनके बच्चोंको अंग्रेज़ी पढ़ाकर काफ़िर बना देगा। यह भी उसको कब गवारा था कि मुसलमान-बच्चे हिन्दू-बच्चोंके साथ पढ़ें! और लड़कियोंकी पढ़ाई के बारेमें तो उसका विश्वास था कि पढ़ना-लिखना सीखकर वह प्रेमियोंसे पत्र-व्यवहार किया करेंगी और भूगोल सीखकर उनको घरसे निकल भागने के रास्ते मालूम हो जाएँगे।

तहसीलदार साहब और उनके कर्मचारी तो आज़ादकी मानपुरमें मौजू-दगीको निहायत ही खतरनाक समझते थे। उनका बस चलता तो उसको एक दिन भी तहसीलमें न रहने देते। ग़ज़ब खुदाका! जब दिसम्बरमें नायब तहसीलदार दौरेपर गया तो गाँववालोंने उसके कैंपके लिए मुफ़्त रसद पहुँ-चानेसे साफ़ इनकार कर दिया। कहने लगे कि, साहबको जो अण्डा, मुर्गी,

घी, तरकारी चाहिए तो नक़द देकर ले जाओ। तहसीलदार साहब जब दिसंबरमें खुद दौरेपर गए और मानपुरमें टिके तो उनकी बेइज़्ज़ती इससे भी ज़्यादा हुई। जब उनकी मोटर गांव में पहुँची तो सिवाय मुखिया, पटवारी, महाजन रामलाल, पण्डित शिवप्रसाद और मौलवी मौला बख्श के किसी गाँववाले ने उनका स्वागत न किया। इससे पहले जब उनकी मोटर आती थी तो गाँव-भर के नंगे, गंदे और भूखे बच्चे उनकी मोटर को घेर लेते थे। मर्द अदब से फ़ासले पर क़तार लगाकर सलाम करते और औरतें अपने-अपने घरोंमेंसे झाँककर 'तहसीलदार' और उनके 'मोटर कार' के दर्शन करतीं। तहसीलदार साहब शानसे उतरते, गरदनके हल्कसे इशारेसे अपनी प्रजाके सलाम का जवाब देते, दो चार पैसे बच्चों के झुण्डमें फेंकते और उनका रिश्वतके मामलेसे तैयार मोटा शरीर उनके शानदार सफेद खेमेमें ग़ायब हो जाता। लेकिन इस साल तहसीलदारको बहुत हैरानी हुई और हैरानी से ज़्यादा गुस्सा आया जब उन्होंने देखा कि उनकी मोटर की आवाज़ ने गाँवमें कोई खास हलचल पैदा नहीं की। किसान अपने काममें लगे थे, औरतें या तो खेतों पर रोटी लेकर गई हुई थीं या अपने-अपने घरोंमें चर्खा कातने या रुई ओटनेमें लगी हुई थीं, लड़के और लड़कियां आज़ादके स्कूलमें पढ़ने गए हुए थे। मतलब यह कि तहसीलदार साहबने गाँवकी बेकारीकी कमी और आत्म सम्मानके इस प्रदर्शनको अपनी सख्त बेइज़्ज़ती समझा। और जब उसी शाम को पटवारी, महाजन, पंडित और मौलवी जैसे गाँव के चार-एक बड़े आदमियोंने एक आवाज़ से आज़ादी की शिकायत की और उसके घोर अपराधों की एक लंबी लिस्ट पेश की, तो क्या वजह थी कि आज़ादका काम बिला रुकावट जारी रहने दिया जाता ?

कुछ रोज बाद खबर मिली कि किसानोंके अगुओं की एक कान्फ्रेन्स होनेवाली है जिसमें दुर्भिक्ष पड़ जाने और वर्षा न होनेकी वजह से लगान न अदा करनेका फ़ैसला किया जाएगा। पुलिसने काफी निगरानी रखी और पूछताछ की; मगर उस कान्फ्रेंसके असल वक्तकी खबर न मिली। कई दिनकी

कोशिश के बाद एक रात को सी. आई. डी. ने रिपोर्ट की कि उस वक्त आज़ाद के मकानपर किसानोंके सब अगुए जमा हैं और कांफ्रेंस हो रही है। पुलिस ने छापा मारा। मगर, न जाने कैसे वक्तसे कुछ ही पहले आजाद के साथियोंको इस धावेकी खबर मिल गई थी और वह रात के अँधेरेमें चुपकेसे निकल गये। जब दारोगा साहब अपने जवानोंको लेकर पहुँचे तो सिवाय आज़ादके मकानमें कोई न था। दांत पीसकर रह गए। तलाशी ली तो अलबत्ता काफ़ी कामके काग़ज़ मिले। लगान अदा न करनेके आन्दोलनके बारेमें पूरे प्रस्ताव मौजूद थे, जिनको पढ़कर सरकार आसानीसे उस आन्दोलनको शुरू होनेसे पहले ही कुचल सकती थी। लेकिन अन्दोलन के अगुओं के नामों की लिस्ट न मिल सकी, जिसके बगैर आज़ादपर साजिशका जुर्म लगाना था। दारोगा साहबने अच्छी तरहसे एक एक कोना टटोल मारा, लेकिन कोई ऐसा कागज़ न मिला जिससे आज़ाद के बाकी साथियोंको पकड़ा जा सकता। मिलता भी कहाँसे? जिस कागज़की उनको तलाश थी वह तो आज़ाद उनकी आहट सुनते ही खा चुका था।

बड़े अफसरोंके कहनेसे दारोगा साहबने आज़ादको गिरफ्तार कर लिया और उसकी ज़बान खुलवानेके लिए अपनी तमाम मशहूर तरकीबोंको इस्तेमाल कर दिया। उन आज़माई हुई तरकीबोंके बेकार साबित होनेपर वे परेशान थे।

अब कौन-सी तरकीब करूँ?—यही सोचते सोचते दारोगा साहब ऊँघ गये। आज घरमें बीबीने काफ़ी स्वादिष्ट खाना पकाया था। उसपर गर्मीका मौसम, दोपहरका समय। एक सिपाही पंखा खींच रहा था। खसकी टट्टी लगी हुई थी। नींद आ ही गई।

कुछ आहट हुई तो दारोगा साहबने आँख खोली। कमरे के दरवाज़े बंद होने की वजह से खासा अँधेरा था। कुछ नींदका नशा भी सवार था। धुँधला-धुँधला-सा नज़र आता था, मगर दारोगा साहब पहचान गए कि जिसका इंतजार वह कर रहे थे—वही है। आज़ादके हाथोंमें हथकड़ियां थीं और

सिपाही रस्सी पकड़े साथ था। उसके सौम्य चेहरेपर पिछले साल दिनोंकी तकलीफ़ों और मुसीबतोंका असर साफ़ दिखाई पड़ रहा था। मगर वह अब भी मुस्करा रहा था। आज़ादकी दृढ़ता और ज़िद से ज़्यादा जो चीज़ दारोग़ा साहबको परेशान करती और गुस्सा दिलाती थी वह उसका हरदम मुस्कराना था। यह मुस्कराहट, जिसमें आत्म विश्वासके साथ दारोग़ा साहबकी हरकतोंके प्रति तिरस्कार भी था, तलवार से ज्यादा घाव लगानेवाली और आगेसे ज्यादा झुलसानेवाली थी। आज़ादको मुस्कराते देखकर दारोग़ा साहबके दिमाग़का पारा आसमानपर पहुँच गया। सिपाहीसे चीखकर बोले, "देखता क्या है। मार इसको जबतक यह अपने साथियोंके नाम न बताए।"

सिपाहीने सूतकी रस्सीको जो उसके हाथमें थी दोहरा करके कोड़ा-सा बना लिया और एक कदम पीछे हटा ताकि आज़ादकी पीठपर पूरे ज़ोर-से मार पड़ सके।

आज़ाद बराबर मुस्करा रहा था और उसकी नज़र दारोग़ा साहब पर गड़ी हुई थी। बजाए डरके दारोग़ा साहबको मालूम हुआ कि वह उनको तिरस्कार और दयाकी दृष्टिसे देख रहा है।

सिपाहीने रस्सीके कोड़ेको आज़मानेके लिए हिलाया, अपने हाथ और आज़ादकी कमरके बीच फ़ासले का अंदाज़ा किया और पूरी ताक़तसे वार किया।

दारोग़ा साहबके मुँहसे एक चीख निकल गई। मालूम होता था कोड़ा गोया उनकी ही कमरपर पड़ा है।

आज़ाद के चेहरे पर मुस्कराहट उसी तरह कायम थी।

सिपाही सर झुकाये अपने कामसे लगा रहा। धड़ाधड़ धड़ाधड़। वह आज़ादकी कमरपर बराबर कोड़े चला रहा था।

दारोग़ा साहब तकलीफ़से चीख रहे थे। देखनेमें तो सिपाही आज़ाद की कमरपर वार कर रहा था, मगर हर वारकी चोट उनकी कमरपर पड़ती थी।

और आज़ाद बराबर मुस्करा रहा था। मालूम होता था दारोगा साहबकी तकलीफ पर हँस रहा है।

सिपाहीने यह देखकर कि आज़ाद पर उसकी मारका कोई खास असर नहीं हो रहा है और ज़्यादा ताक़तसे कोड़ा चलाना शुरू किया।

दारोगा साहब तकलीफ़ से चीखते रहे। उनकी कमर कोड़ोंकी लगातार बौछारेसे फोड़ेकी तरह दुख रही थी।

सिपाहीने एक और भरपूर हाथ आज़ादकी कमरपर चलाया तो दारोगा साहबसे बरदाश्त न हो सका। मालूम होता था अगर एक भी और कोड़ा उनकी कमरपर पड़ा तो उनकी जान निकल जायगी।

"बस, बस!" दारोगा साहब बेतहाशा चीखे। "बन्द करो, बन्द करो!" यह कहकर वह कुर्सीसे उठना ही चाहते थे कि उनकी आंख खुल गई।

कमरा खाली था। "तो क्या मैंने ख्वाब देखा है?" उन्होंने सोचा, मगर उनका सारा शरीर पसीनेसे सराबोर था। और कमर....?....और कमरमें चोटकी तकलीफ़से सख्त दर्द हो रहा था।

परेशान होकर दारोगा साहबने पीछे मुड़कर देखा। उनकी छोटी लड़की खड़ी उनकी कमर थपका रही थी। बापकी घबराहट देखकर बच्ची खिलखिलाकर हँस पड़ी।

बरामदेमें क़दमोंकी आहट हुई और सिपाही आज़ाद समेत दाखिल हुआ। वह कमबख्त अब भी मुस्करा रहा था।

"क्या हुक्म है, हुजूर?" सिपाहीने पूछा। दारोगा साहबने एक हाथ से अपनी कमरको टटोला, दूसरेसे चेहरेका पसीना साफ किया, ताकि परेशानी ज़ाहिर न हो। मगर उनकी आवाज़ भी क़ाबूमें न थी।

"क.......क........क्या है? क.......क........कौन है?" सूबे का सबसे रोबदार दारोगा एक मुजरिमके सामने हकला रहा था। "हां... यह आज़ाद साहब.......इन.......इन.......इनको रिहा कर दो। साज़िशका कोई सबूत नहीं मिला।"